अध्याय–तृतीय

नासिरा शर्मा की कहानियों में उद्घाटित विविध पक्ष

अध्याय–3

नासिरा शर्मा की कहानियों में उद्घाटित विविध पक्ष

सन् 1976 में नासिरा शर्मा ने हिंदी कथा साहित्य के क्षेत्र में प्रवेश किया। नासिरा जी के कथा संग्रह और कहानियों में स्त्री–विमर्श से लेकर देश–विदेश की विभिन्न समस्याओं पर विचार हुआ है। नासिरा जी आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य में एक प्रखर लेखिका के रूप में समक्ष आई। इनके कथा–साहित्य में वैविध्य है। इनका साहित्य इंसानी मन के अंतर कोने में मौजूद उन सच्चाईयों को सामने लाती है जिन्हें हम अक्सर नजरअंदाज कर देते हैं या फिर जानबूझकर सामने नहीं आने देते हैं। देश–विदेश की कई छोटी–बड़ी घटनाओं का कथ्य बनाते हुए वे हिंदी कथा साहित्य को समृद्ध करती है। इनका साहित्य देश, समाज की सीमा को लांघता हुआ ईरान तक की यात्राा तय करता है। नासिरा जी के कई कहानी नारी प्रधान हैं। नारी के प्रति उनका दृष्टिकोण विस्तृत है। वे नारी को पुरुष की प्रतिस्पर्धा नहीं मानती। बल्कि वह स्वयं एक स्वतंत्र व्यक्ति हैं। और इसी स्थिति में उसे समाज में अपना स्थान प्राप्त करना है। अमरीश सिन्हा लिखते हैं कि–''नासिरा शर्मा का कथा साहित्य मानव मूल्यों विशेषकर नारी–मन को उकेरता है जिससे स्त्री–पुरुष संबंधों, पुरुष प्रधान समाज में स्त्री की दशा–दुर्दशा, स्त्री–विमर्श का ईमानदारीपूर्वक किया गया चित्रण है। कथा–साहित्य में विद्रोह की एक परंपरा भी विकसित होती है। जिसका उद्देश्य है एक व्यवस्था की स्थापना जो पूर्ण रूप से पुरुष प्रधान न हो। स्त्री–पुरुष की समान भागीदारी हो, किसी का किसी पर वर्चस्व न हो, हमारा समाज तभी प्रकृति प्रदत्त इंसानियत की खुशबू से सुवासित हो सकेगा। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु नासिरा जी का कथा–साहित्य महिलाओं में नई शक्ति, ललक और हिम्मत भरने की क्षमता भी रखता है।''[208] कथा–साहित्य में विस्तृत जीवन का विवेचन करते हुए लेखक अनेक समस्याओं का वर्णन करता है। ये समस्याएँ जीवन संघर्ष को स्पष्ट करते हुए उन पर विजय पाने का मार्ग दिखाती है। नासिरा शर्मा के कथा–साहित्य में वर्तमान दौर की प्रायः हर महत्वपूर्ण समस्या

---

[208] अनभै, जुलाई–सितम्बर 2010, पृ. 75

का गंभीरतापूर्वक चित्रण हुआ है।

1. नारी समस्या

नारी के शोषण की शुरूआत तो उसके जन्म से ही हो जाती है। जहाँ बेटी का जन्म दुख और चिंता का कारण बनता है। वही बेटे के जन्म पर खुशियाँ मनाई जाती हैं। नारी शोषण आज के समाज की ज्वलंत समस्या है। नारी कहीं बेटी के रूप में, कहीं पत्नी के रूप में, कहीं कामकाजी नारी के रूप में, कहीं खेत और सड़क की मजदूर के रूप में और न जाने कहाँ–कहाँ और कितने रूपों में प्रताड़ित एवं शोषित है। नासिरा शर्मा ने नारी के जीवन के अनेक ज्वलंत प्रश्नों को उठाया है तो नारी के सामने मुँह बाए खड़े है। नारी को परिवार के संतुलन के लिए बेटी, बहन, माता, पत्नी, बहू आदि कई रूपों में अनेक दायित्व का निर्वाह व्यक्तिगत सुखों और सुविधाओं के बदले में करना पड़ता है। उसके सुख चिंता का कम ही ख्याल रखा जाता है। दूसरों की सुख–सुविधाओं की चिंता करते–करते वह स्वयं शोषण की शिकार होती है। उसकी इच्छाओं और मान्यताओं को उसी की तरह दोयम दर्जा ही मिलता हैं यहाँ पर नासिरा शर्मा के कथा–साहित्य के माध्यम से परिवार में स्त्री के साथ होने वाले शोषण का चित्रण किया गया है।

'खुदा की वापसी' कहानी संग्रह में नारी शोषण को लेकर कुछ कहानियाँ लिखी गई है। इस संग्रह के फ्लैप पर लिखा है। 'खुदा की वापसी' की कहानियाँ एक समुदाय विशेष की होकर भी विभिन्न वर्गों का प्रतिनिधित्व करती हैं। नारी के संघर्षों और उत्पीड़नों से उपजी विद्रूपताओं तथा अर्थहीन सामाजिक रूढ़िचार पर तीखी चोट करती ये कहानियाँ समकालीन परिवेश और जीवन की विसंगतियों का प्रखर विश्लेषण भी करती है। 'दहलीज' कहानी स्त्री के घुटन भरे जीवन का दस्तावेज है जिसमें लड़कियों के साथ किया जाने वाला भेदभाव तथा रूढ़ियों के कारण घुटन भरा जीवन जीने के लिए विवश युवतियों की व्यथा का चित्रण है।

'मेरा घर कहाँ' कहानी की नायिका विधवा लाली धोबिन और उसकी पुत्री सोना के संघर्षों की करुण व्यथा की दास्ताँ है। ''इस दुनिया के हर कोने पर मर्द खड़ा मिलेगा, कभी प्रेमी के रूप में तो, कभी बलात्कारी के रूप में, मगर जो पति ढूँढ़ने निकलो तो एक भी कायदे का आदमी नजर नहीं आएगा, जिसके साथ उम्र

एक छत के नीचे गुजार दी जाए।''[209]

औरत की आजादी के पक्ष में नासिरा शर्मा कहती है कि ''एक औरत को यह आजादी होनी चाहिए कि वह जिस तरह से रहना चाहती है रहे, अपनी जिंदगी जिसमें खुशी समझती है। उसी में जीए। हमें उसकी जरूरत के मुताबिक लड़ाई लड़नी होगी। उसे क्या चाहिए यह जानना होगा। आने वाली पीढ़ी को यह आजादी हमें देनी पड़ेगी कि वे अपने रिश्ते स्वयं तय करें और अपनी मर्जी से अपने घर में रह सके।''[210]

मेहर की विडम्बना

नासिरा शर्मा कहती हैं कि ''मेहर मुस्लिम विवाह में एक कानूनी अधिकार है जो सिर्फ औरत के लिए है क्योंकि इस्लामिक तरीके से विवाह के लिए चार चीजों का होना जरूरी है–1. लड़की की इजाजत होना, 2. निकाह सबके सामने हो, 3. गवाह के तौर पर दो गवाहों का होना, 4. मेहर का होना। चारों में से एक भी कम हुआ तो विवाह नहीं हो सकता। मेहर का शाब्दिक अर्थ कीमत नहीं, बल्कि उस वायदे की जमानत होना होता है जो शादी के समय पति अपनी पत्नी से उसे सदा सुखी रखने के लिए करता है। लड़की अपने–आपको सम्मानित महसूस करती है। यह उसके और उसके परिवार के लिए गर्व का विषय होता है। मेहर लड़के वाले अपनी हैसियत के अनुसार बाँधते हैं और इसकी अदायगी तुरंत होनी होती है।''[211]

नासिरा शर्मा 'खुदा की वापसी' कहानी में मेहर की समस्या को उठाया है। कहानी की नायिका 'फरजाना' की शादी एक बिजनेस क्लास परिवार में होती है और मेहर की रकम पचास हजार रुपये तय होती है। उसका पति सुहागरात को कहता है कि ''मैंने मजहब की सभी कानूनी किताबों को पढ़ा है, मौलवियों से बातें की है। इसलिए मैं चाहता हूँ बात साफ हो सके और आपके दिल में भी कोई खलिश बाकी न बचे।.... कायदे से मेहर के पचास हजार रुपये मुझे इस समय अदा

---

209 खुदा की वापसी, कहानी संग्रह, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली–110003, संस्करण–2013 पृ. 538

210 औरत के लिए औरत, नासिरा शर्मा, 'औरत के बहाने एक मुलाकात', नासिरा शर्मा से मुलाकात, पृ. 197

211 औरत के लिए औरत, नासिरा शर्मा 'औरत के अधिकारों का रक्षक है', पृ. 187 14. खुदा की वापसी, पृ. 393

करने चाहिए, तब आपका घूँघट उलटने का हकदान बनता हूँ, आपका बदन छूने.... वह औरत शौहर के लिए बहुत मुबारक होती है जो पहली रात अपने शौहर का मेहर माफ कर दे। वह बड़ी पाकदामन समझी जाती है।''[212]

शोषण के विभिन्न रूपों का वर्णन नासिरा जी अपने कथा–साहित्य में करती है और प्रेरित करती है कि इस विडम्बना का निदान किया जाए।

विवाहेत्तर संबंधी विडम्बना

विवाहेत्तर संबंध के कई पहलू होते हैं। कभी मजबूरी में तो कभी, एकाकीपन में, कभी यौन संतुष्टि की अतृप्ति के कारण स्थापित होता है। विवाह के बाद स्त्री–पुरुष संबंधों के कारण विविध समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। नासिरा जी का कथन है–''औरत मर्द का अनुपात जिस समाज में संतुलन खो दे वहाँ पर इंसानी रिश्ते भी सहज नहीं रह पाते हैं। अपनों से बिछुड़ने का दुख कहीं जाकर ठहर जाता है और मृत्यु की हकीकत स्वीकार करनी पड़ती है। मगर द्वेष, घृणा, अविश्वास, आतंक, अत्याचार की यादों से मुक्त होना कठिन होता है और ऐसे नवनिर्मित परन्तु अन्यायी समाज में रहने का फिर अवसर मुझे मिला तो नहीं कह सकती इंसानी रिश्तों का कौन–सा रूप देखने को मिलेगा। निष्ठा एवं प्रेम की परिभाषा का नया अर्थ तब मेरी कहानी को क्या स्वरूप देगा?[213]

'दूसरा ताजमहल' कहानी के बारे में प्रज्ञा जी लिखती हैं–''अति व्यस्त पति और विदेश में रहने वाले बेटों की कमी नयना के जीवन में संवादहीनता ला देती है। रवि से दोस्ती और संवाद के बीच वह नयी कल्पना, नये जीवन की उड़ान भरती हुई जब रवि के पास पहुँचती है तो सपने किरचो की भांति बिखर जाते हैं। उसे पता चलता है कि अकेलेपन में डूबा रवि शराब के नशे में फोन पर फंतासिया गढ़ता है कि जिनके माध्यम से वह अपने जीवन की अपूर्ण इच्छाओं को रंग देना चाहता है। सुबह का सच 'इस फंतासी लोक का निर्मम हत्यारा बन' जाता है। और यही हत्यारा नयना को वो ताजमहल देता है जहाँ मुमताज के साथ वह भी दफन

---

[212] शाल्मली, नासिरा शर्मा, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, संस्करण–2012 पृ. 146

[213] नासिरा शर्मा, जिंदा मुहावरे, वाणी प्रकाशन, 21–ए, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण–2012

हो जाती है।''[214]

अति सुरक्षित समाज में स्त्री को किस प्रकार उपभोग की वस्तु मात्र मान लिया गया है। उन चंद स्त्रियों को अपवादस्वरूप समझा जाए तो स्वयं इस रूप को स्वेंच्छा से अंगीकृत किए हुए है तो यही कहना उपयुक्त होगा कि अभिजात्य वर्ग में महिलाएँ मानसिक उद्वेलनों की शिकार हैं। भावनाएँ कोई मायने नहीं रखती तथा एकांत के उपलब्ध क्षणों में चुपचाप सिसकती नारी अपने उत्पीड़न को जज़्ब कर लेने को मजबूर है। नारी की मानसिक अर्न्तजटिलता की कहानी 'दूसरा ताजमहल' जिसमें नायिका नयना जीवन में व्याप्त एकाकीपन के कारण दूसरे पुरुष की ओर आकर्षित होती है परन्तु जब उसे सच का पता पड़ता है तो नयना के पैरों के नीचे की जमीन खिसक जाती है।

'संगसार' कहानी में आलिया अपने पति को छोड़ किसी अन्य के संबंध में रहती है। कहानी के अंत में उसे मौत की सजा दी जाती है। यह प्रश्न कभी 'संगसार' के बहाने कभी अन्य नाम के द्वारा साहित्य में, जीवन में उठता रहेगा कि औरत–मर्द उस प्राचीन संबंध को जो किसी भी वाद–विवाद, धर्म कानून से पहले वजूद में आया था। इसके जीने और सुख की प्राप्ति की युग में कितनी और किस हद तक मिलती है। अपने शरीर पर खुद व्यक्ति का कितना अधिकार है और वह किस सीमा तक प्रयोग कर सकता है।

'नमकदान' कहानी में शादी के 10 साल बीत जाने के बाद गुल का पति किसी ओर स्त्री के संबंध में आ जाता है।

'मिस्र की ममी' कहानी में योता और कुरूश एक–दूसरे से प्रेम करते हैं परन्तु योता का कुरूश में अपना भविष्य नहीं दिखता तो वह अपने प्रेम को छोड़ एक व्यापारी शहाब से शादी कर लेती है परन्तु शादी के बाद अकेलेपन की व्यथा को झेलते हुए वह योता अपने पूर्व प्रेमी कुरूश के पास जाती है और उससे यौन तृप्ति प्राप्त कर उसके बच्चे की माँ बनना चाहती है।

'यहूदी सरगर्दान' कहानी का नायक डॉ. वोहरान विवाहित है। वह चार बच्चों का पिता है। उसका परिवार ईरान में रहता है परन्तु एक विवाहिता सहर से

---

[214] बत्रा, सुदेश (संपादक)–अग्निपथ की राही, साहित्य भण्डार, चाहचन्द, इलाहाबाद–211003, संस्करण–2013 पृ. 154

शारीरिक संबंध स्थापित हो जाते हैं। डॉ. वोहरान के शब्दों में "तीस साल, मर्द की भरपूर जवानी का जाम छलकने की उम्र होती है, और तीस वर्ष औरत की काम–वासना की पराकाष्ठा का समय होता है। सहर तीस वर्ष की भरपूर जवान औरत थी। इश्क और जवानी की दीवानगी हमारे बीच पाँच साल तक चली।....जाने कैसे उसके पति को हम पर शक हो गया। मैं उसका जीवन खराब नहीं करना चाहता था। इसलिए खामोशी से अमेरिका चला गया।"[215]

नासिरा शर्मा स्त्री–पुरुष संबंधों के अतिवाद से भिन्न एक समन्वयात्मक रूप प्रस्तुत करती है। "मर्द न हमारा दुश्मन है, न हरीफ, वह हमारी तरह का इंसान है। मानती हूँ औरतों की तकलीफ बेशुमार है। मगर मर्द कब अपनी उलझन से आजाद है। उसकी सबसे बड़ी उलझन तो आज की बदलती औरत है। जिसे वह समझ नहीं पा रहा है, मर्दों को हम जज्बाती नजर से न देखकर व्यावहारिक तौर पर देखे तो शायद हम उनकी कुंठाओं की गिरहे खोल सकें और उन्हें बहुत कुछ समझा सकें।"[216]

उपर्युक्त कथन से यह बात निकलकर आती है कि भारतीय समाज को उन सभी स्त्रियों को यह अपनी नियति मान लेनी चाहिए, जिसके पति जमाल जैसे लोग हैं, नहीं तो आए दिन विवाद होगा या संबंध विच्छेद। दोनों के लिए एक स्त्री को तैयार रहना पडेगा, क्योंकि इस सभी के पीछे एक पुरूषवादी मानसिकता कार्य करती हैं। हम पुरूष हैं, चाहे जो करें, परन्तु तुम स्त्री हो। पतिव्रत का पालन करना तुम्हारा धर्म है, परन्तु पत्निव्रत का पालन करना हमारा धर्म नहीं हैं, क्योंकि यह नियम हमने बनाये हैं। नासिरा शर्मा की एक अन्य कहानी 'अपनी कोख' में स्त्री की उस समस्या को उजागर करती है, जिसका स्त्री प्राचीनकाल से ही सामना कर रही है। यह प्रश्न है स्त्री के पहचान, अस्तित्व और अधिकार का। जिसका यह पुरूष सत्तात्मक समाज हमेशा से गला घोटता आया है, यद्यपि आज हम बात करते हैं, समानता, सामान अधिकारों, बराबरी का दर्जा देने की और सबसे बड़ी बात कि लड़के–लड़की में भेद न करने की क्या हम आज 21वीं सदी में इस मानसिकता से बाहर आ पाए

---

[215] औरत : अस्तित्व और अस्मिता, पृ. 53

[216] नासिरा शर्मा, ठीकरे की मंगनी, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2013 पृ. 127

हैं, कि लड़का हो या लड़की उसमें कोई अन्तर नहीं हैं। पड़ताल करने पर पायेंगे कि कुछ परिवर्तनों के साथ उसमें कोई बदलाव नही आया है।

स्त्रियों के उन्नयन और आत्मनिर्भरता का प्रश्न हमेशा सामाज में उठता रहा है। स्त्रियों को सम्मान और बराबरी का दर्जा दिलाने के लिए 'नासिरा शर्मा' अपने उपन्यास में और कहानियों में प्रयासरत दिखती हैं, नारी का सम्मान एक सभ्य समाज का, निर्माण करता है। समाज कितना सभ्य और सुसंस्कृत है, इसका पता नारी की स्थिति को देखकर चलता है। सामाज में अधिकांश व्यक्ति नारी का सम्मान और उनके गरिमा का ख्याल रखते हैं। लेकिन कुछ विकृत मानसिकता के लोग भी समाज में है, जो स्त्रियों को घर की नौकरानी की तरह देखते हैं। अधिकांश ऐसे लोग भी है जो स्त्रियों को पुरूष के बराबर दर्जा देने के पक्षधर नहीं हैं। इन्ही बातों को ध्यान में रखकर 'नासिरा जी' नारी मुक्ति और नारी आत्मनिर्भरता को अपने लेखन में अधिक महत्व देती हैं।

2. समुदाय

हिन्दी साहित्य में बींसवी सदी के उत्तरार्द्ध का समय विमर्शों के उभरने का समय रहा है। जिसमें 'स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श आदि प्रभाव है। 21वी सदी के प्रारम्भ होते ही एक नये विमर्श के रूप में अल्पसंख्यक विमर्श भी सामने आता है। अल्पसंख्यक विमर्श के समान रूप से मुस्लिम संघर्ष की बात की जाती है।

एक परिवार की नींव हंसी खुशी भरा माहौल होता है। इस माहौल में रहते हुए इंसान एक–दूसरे के सुख से सुखी और एक–दूसरे के दुःख में दुःखी अनुभव करता है। परिवार में हर व्यक्ति को नैतिकतापूर्ण जीवनयापन करना चाहिए। एक–दूसरे के प्रति प्रेम, आदर, सहानुभूति, सहयोग की भावना अंतर्निहित होनी चाहिए। कई परिवारों से मिलकर ही एक समाज का निर्माण होता है। अतः इसमें उत्पन्न समस्याएँ निश्चित ही समाज पर प्रभाव डालती है।

'पंचनगीनावाले' कहानी में संयुक्त परिवार की कथा कही गई है। इस परिवार में तीन लड़के, तीन बेटियाँ थीं। बेटियों का विवाह सम्पन्न परिवार में हो गया था। तीनों लड़के अपनी–अपनी गृहस्थी में मुतमईन थे। जिनमें दो लड़के विवाहित और एक अविवाहित और विवाहित भाईयों के बच्चे रहते हैं। हर परिवार

की तरह ज्योतिषराम टंडन के संयुक्त परिवार में एक समस्या खड़ी हुई। चाचा, ताऊ के बच्चे तरू और तुषार एक–दूसरे से प्रेम करते है और शादी करना चाहते हैं। जब यह बात वह दोनों परिवार के सदस्यों को बताते हैं तो सभी दाँतों तले अगूँली दबा लेते हैं। सारा परिवार उनका विरोध करता है। ''संयुक्त परिवार में ऐसी बगावतें दबा दी जाती है। आवाजें घोंट दी जाती हैं। हसरतें कत्ल कर दी जाती हैं और इंसान वही करता है जो करता चला आ रहा है। क्योंकि उसमें ही सारे–परिवारजनों की भलाई होती है।''[217]

'संदकूची' कहानी में संयुक्त परिवार की ईर्ष्या, कलह, बतकही.... औरतों की षड्यंत्रकारी प्रवृत्ति और अपनत्व के बोध का निरूपण है। 'पतझड़ के फूल' में अनाहिता की कहानी है, जिसके कंधों पर बीमार माँ और छोटी बहन की जिम्मेदारी है। अपने परिवार की जिम्मेदारी निभाते–निभाते वह भूल ही चुकी है कि उसकी भी कोई जिंदगी है और स्वयं जिंदगी भर क्वारी रह जाती है।

'चार बहनें शीशमहल की' सुहाग स्टोर वाले करीम और उसके संयुक्त परिवार की कहानी है। करीम के बेटे शरीफ की चार बेटियाँ होती है जिसमें करीम की माँ दुखी हो जाती है और करीम की मां शरीफ की दूसरी शादी करवाना चाहती है। 'आमोख्ता' कहानी में विस्थापित हुए परिवार की कहानी है। विस्थापन से स्थापित समस्याओं का नासिरा जी ने सूक्ष्मता से चित्रण किया है।

'उड़ान की शर्तें' में महशी और तालिब दोनों कलमकार है। प्यार होता है। शादी भी करते हैं। दोनों की यह दूसरी शादी है। महशी का पति, और तालिब की पत्नी दोनों मर चुके हैं। पहले विवाह से दोनों को एक–एक संतान है। महशी का पुरानी जिंदगी और वर्तमान की कुछ घटनाओं की वजह से वे साथ नहीं रह पाते, इसका प्रभाव उनके बच्चों पर भी पड़ता है। 'नमक का घर' विस्थापन की समस्या से पीड़ित कहानी है। 'विरासत' कहानी में शहरीकरण की समस्या के चलते परिवार विघटन का मार्मिक अंकन किया है।

'परिन्दे' कहानी 'विजय' परिवार की जिम्मेदारियों के चलते, नौकरी की तलाश में अपने वतन और परिवार को छोड़कर ईरान चला जाता है। जहाँ उसे

---

[217] नासिरा शर्मा, औरत के लिए औरत, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2015, पृ. 292

अपने परिवार की यादें सदा विचलित करती रहती है। इसके साथ ही नासिरा जी ने ईरानी परिवार, अफगानी परिवार, फिलीस्तनी परिवार का वर्णन भी सटीक ढंग से किया है।

इस संकलन के सम्बन्ध में नासिरा जी का कथन है कि–यह संकलन उन यथार्थ कहानियों का सुखद समूह है, जिसके आधार पर क्षेत्र, समाज और मानव समुदाय की अनुभूति प्राप्त की जा सकती है। मरुभूमि से जुड़े लेखकों की ये कृतियाँ हैं, जो मनःस्थल को हरा–भरा, क्रियाशील तथा जीवित करने की क्षमता रखती हैं।

3. धार्मिकता

भारतीय जन–समाज अपनी आस्थाओं और परंपराओं में धर्म–भीरू और कर्मकाण्डी है। जन्म से लेकर मृत्यु तक सोलह संस्कार हैं। हर भारतीय अपने–अपने धर्म की हिदायतों, मान्यताओं और परम्पराओं में जीता है। चाहे वह उच्च्य वर्ग का हो या मध्य एवं निम्न वर्ग का। जन्म, विवाह, प्रीति भोज एवं मृतक संस्कारों में कर्मकाण्ड का निर्वाह कमोवेश हर कोई अपने धर्म एवं मजहब के अनुसार करता है। खान–पान, रहन–सहन, रीति–रिवाज एवं सांस्कृतिक जन–जीवन में भी अपने–अपने धर्म, मजहब, ईमान एवं आस्था का अनुगमन हैं।

धर्म को परिभाषित करना एवं उसके स्वरूप को निर्धारित करना अत्यधिक कठिन है। भारतीय समाज और संस्कृति में धर्म का अपना विशेष स्थान रहा है। भारत के संविधान में कहा गया है कि "भारत एक धर्म–निरपेक्ष देश है जिसके अनुसार हर व्यक्ति को अपनी इच्छा तथा विश्वास के आधार पर किसी भी धर्म का पालन करने का अधिकार है। धर्म जीवन को नियमित बनाकर संकट सहन करने की शक्ति देता है। लेकिन व्यावहारिक स्तर पर धर्म के नाम पर जो अत्याचार इस देश में होता आया है, वह किसी से छिपा नहीं है। धर्म के साथ हमारे समाज में जातिभेद और साम्प्रदायिकता का घुन भी लगा हुआ है। नवीन विचारधारा, वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा औद्योगिक क्रांति आदि के कारण आधुनिक युग की धार्मिक चेतना में परिवर्तन होने लगा। धार्मिक क्षेत्र में व्याप्त अनेक कर्मकाण्ड और आडम्बर का विरोध

नए युग के आरंभ के साथ होने लगा।''[218]

भारतवर्ष में अनेक धर्म अपनी अलग मान्यताएँ होने के बावजूद इकट्ठे हो रहे हैं। सच्चा धर्म पक्षपात विहीन होता है। कोई भी धर्म अनैतिक कार्य करने को सिखाता नहीं तथा आपस में द्वेष रखना भी नहीं सिखाता। आज धर्म का पालन करने वाले लोग आपस में लड़ते नहीं वरन् सुख शांति से रहते हैं। मूलतः ''विचारों की कोई भी गंभीर साधना विश्वासों की कोई भी खोज, सद्‌गुणों के अभ्यास का कोई भी प्रयत्न, ये सब उन्हीं स्रोतों से उत्पन्न होते हैं, जिनका नाम धर्म है।''[219]

कालानुरूप धर्म में भी परिवर्तन हो रहा है। इस परिवर्तन की प्रक्रिया से धर्म परिवर्तन होकर वह समस्या बने लोगों के सामने आरहा है। आज लोग धर्म का अपने उपयोग, अपने स्वार्थ के लिए कर रहे हैं। इसी कारण समाज में धर्म को लेकर लोगों के मन में कलुषित वातावरण निर्माण हो गया है। धर्म के असली रूप को लोग भूल गए हैं।

धर्म से उत्पन्न समस्याएँ अब व्यापक हो गई हैं। अब धर्म सिर्फ समाज पर नहीं बल्कि राजनीति तथा जीवन के अन्य क्षेत्रों पर भी प्रभाव डालता है। नासिरा शर्मा इस संबंध में लिखती हैं—''बाजार ने पिछले कई दशकों से धर्म को गोद ले रखा है। जेवर, खाने—पीने की नयी से नयी चीजों का प्रचार धार्मिक भावनाओं के मिश्रण से किसी बाल की तरह फैला हुआ था। धर्म का मूल भाव तो कहीं खो चुका था। किंतु निष्ठा अलबत्ता शेख रंगों में अपने को अभिव्यक्त करने के लिए व्याकुल नजर आ रही थी।''[220]

अंधविश्वास सिर्फ भारत में ही नहीं बल्कि विश्व के कई देशों में चलता आ रहा है। हर देश में अंधविश्वास का स्वरूप अलग—अलग होता है। यही अंधविश्वास लोगों की प्रगति में बाधा बनकर समस्या के रूप में आता है। ''कभी यह धर्म का नाम लेकर आता है, और कभी जाति का, कभी राष्ट्रीय परंपरा का, कभी वंश खानदान का, कभी नीति—रीति का, कभी देवी—देवता और प्राचीन ऋषि मुनियों

---

[218] बोगदे से बाहर, डॉ. अमरीश सिन्हा, शिल्पायन पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, संस्करण—2015 पृ. 69

[219] डॉ. राधाकृष्ण, धर्म और समाज, पृ. 40

[220] अक्षयवट, नासिरा शर्मा, भारतीय ज्ञानपीठ, संस्करण—2013 पृ. 10

का।''[221]

नासिरा जी ने हिंदू और मुस्लिम दोनों समाजों की रूढ़ियों का वर्णन किया है। उनके अनुसार जब ये रूढ़ियाँ भीषण रूप धारण कर लेती हैं तो समस्या बन जाती हैं।

'मिट्टी का सफर' कहानी ईरानी परिवेश से संबंधित है। मुश्दगुलाम का बेटा मेहरम पाँव में आई चोट के कारण परेशान है। लेकिन मुश्द्गुलाम उसे डॉक्टर के पास नहीं ले जाता है, तो दुकान पर बैठे लोगों में से एक आदमी कहता है, मुश्दआगा! सामने वाले मौलवी से पानी फुँकवा लो। बच्चा है, नजर लग गई होगी।

4. सामाजिकता

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और समाज के विभिन्न नियमों का पालन उसका धर्म है। समाज एक व्यापक संकल्पना है। मनुष्य समाज का अभिन्न अंग है। मनुष्य जीवन के सभी क्रियाकलाप इसी समाज में सम्पन्न होते हैं। जन्म से लेकर मृत्यु तक मनुष्य इसी समाज का अभिन्न अंग बनकर उनका समाज की उन्नति में अपना योगदान देता है। मनुष्य की शिक्षा–दीक्षा, विवाह, गृहस्थी, उपजीविका, लेन–देन, संतानोत्पत्ति, उनका पालन–पोषण, शिक्षा, विवाह आदि कार्य समाज में सम्पन्न होते हैं। श्यामसुंदर दास जी द्वारा संपादित कोश में समाज का अर्थ– ''1. समूह, संघ/गिरोह/दल, 2. सभा, 3. हाथी, 4. एक ही स्थान पर रहने वाले अथवा एक ही प्रकार का व्यवसाय आदि करने वाले वे लोग जो मिलकर अपना एक अलग समूह बनाते हैं। समुदाय। जैसे–शिक्षित समाज, ब्राह्मण समाज। 5. वह संस्था जो बहुत से लोगों ने एक साथ मिलकर किसी विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति के लिए स्थापित की हो। सभा। जैसे संगीत समाज, साहित्य समाज, 6. प्राचुर्य, समुच्चय, संग्रह (को.), 7. एक प्रकार का गृहयोग, 8. मिलना, एकत्र होना (को.)।''[222]

समाज के नियमों का उल्लंघन और व्यवहार में असंतुलन सामाजिक समस्याओं को उत्पन्न करता है। भारतीय समाज की संरचना काफी जटिल है। इनमें कई अंधविश्वासों का भी समावेश है। जो समाज के लिए घातक है। समाज

---

[221] सं. डॉ. शशि तिवारी, भारतीय धर्म और संस्कृति, पृ. 47 (डॉ. सीता श्रीवास्तव, भारत में धार्मिक एकता)

[222] हिंदी विशाल शब्दसागर दसवाँ भाग–संपा.–श्यामसुंदर दास, पृ. 4968

की रूढ़िवादी प्रथाएँ जो समस्या बनकर खड़ी हो गई हैं, उन्हें दूर करने का दायित्व लेखक का ही है। सामाजिक विडम्बनाओं का विश्लेषण करने से पूर्व जान ले कि भारतीय समाज का स्वरूप क्या है? भारतीय समाज की संरचना पर विचार करते हुए डॉ. देवेन्द्र चौबे ने लिखा है–''भारतीय समाज की संरचना का विश्लेषण करने पर स्पष्टतः पता चलता है कि सिद्धांत और व्यवहार दोनों रूपों में यह एक बहुसामुदायिक समाज है जिसमें विभिन्न वर्गों, जातियों, प्रजातियों, धर्मों और सम्प्रदायों के लोग रहते हैं। उनकी अपनी एक अलग संस्कृति और सामाजिक प्रतिबद्धता है, जो उनके जीवन को संचालित और निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यही संस्कृति और सामाजिक प्रतिबद्धता पूरे राष्ट्र और समाज में उनकी एक अलग पहचान बनाती है। जिसे वे सुरक्षित रखने की कोशिश करते हैं। इसी स्वतंत्र अस्तित्व और व्यक्तित्व निर्माण के प्रयास में वह समूह, समुदाय अथवा समाज राष्ट्रीय जीवन की मुख्यधारा से बार–बार टकराता है। इस क्रम में उसकी कोशिश होती है कि वह संबंधित राष्ट्र की मुख्यधारा के साथ–साथ विकास की प्रक्रिया में सहभागी भी बने। कई बार रूढ़िगत सामाजिक व्यवस्था और अज्ञानता, मुख्यधारा के विकास की प्रक्रिया में अव्यवस्था और अधिकांशतः प्रभुवर्ग जानबूझकर उन्हें विकास की प्रक्रिया से वंचित कर दिये जाने के कारण वह समुदाय अथवा समाज राष्ट्रीय जीवन की मुख्य–धारा में सम्मिलित नहीं हो पाता है। परिणामतः विकास की प्रक्रिया से वंचित हो जाने के कारण वह समूह अथवा समुदाय धीरे–धीरे समाज की मुख्यधारा से कट जाता है और अंततः हाशिये पर चला जाता है।''[223] सामाजिक विडम्बनाओं के अंतर्गत हम कुछ समस्याओं पर दृष्टिपात करेंगे।

महानगरीय जीवन ने मनुष्य को संवेदनारहित बना दिया है। 'बुतखाना' कहानी में रमेश जो छोटे शहर से आकर महानगर की सुबह–शाम में इस तरह रच–बस गया कि उसकी आँखों के सामने उसके एक परिचित का ऐक्सीडेंट हो जाता है किंतु वह उसकी सहायता करने के बजाय वहाँ से चला जाता है।

'दुनिया' कहानी में शोभना कॉलेज की प्रिंसिपल है। अपनी व्यस्तता के चलते वह अपने पिता की मृत्यु हो जाने पर भी नहीं जाती वह अपने पति से कहती है कि

---

[223] समकालीन लेखिका नासिरा शर्मा का कथा–साहित्य, डॉ. ज्योति गजभिए, पृ. 110

''दिल का कहना मानने का मतलब है चोटें सहना, जो मुझे मंजूर नहीं। वह रास्ता मैं बहुत पहले छोड़ चुकी हूँ। उसमें दुख ही दुख है। मिलता–मिलाता कुछ नहीं।''[224]

समकालीन कथा साहित्य में नासिरा शर्मा एक विवादास्पद लेकिन महत्वपूर्ण रचनाकार हैं जिन्होंने हिंदी कथा–साहित्य में अपनी रचनात्मक कृतियों से विशिष्ट पहचान दर्ज की है। समाज के विभिन्न पक्षों और जाहिर तौर पर साहित्य लेखन में पुरुषों का वर्चस्व रहा है। लेकिन यह भी सत्य है कि साहित्य रचना संसार में पुरुष रचनाकारों का वर्चस्व गुजरे जमाने की बात हो चली है। समय परिवर्तन के साथ गुजरे कुछ दशकों से नारी ने विभिन्न आयामों में अपनी पहचान विश्व में कराई है। परन्तु विकास के विभिन्न आयामों से रूबरू होने के बावजूद समाज में महिलाओं की स्थिति आज भी दोयम दर्जे की बनी हुई है। समाज में परिवर्तन के साथ नारी उद्धार के आंदोलनों के साथ सतीप्रथा, दहेज प्रथा, बाल–विवाह तथा विधवा समस्या से समाज को मुक्ति तो मिल गई है। महिलाएँ अपने अधिकारों के प्रति जागरूक तो हो गईं। नारी शिक्षा का प्रतिशत भी बढ़ गया। लेकिन समाज का नारी के प्रति पक्षपातपूर्ण रवैया, पुरुष द्वारा स्त्री को अपने से कमतर एवं स्वयं को श्रेष्ठतम समझने की सोच में कमी नहीं आई है और यही वजह है कि अकेले भारत में ही नहीं वरन् दुनिया में महिलाएँ स्त्री होने के दर्द एवं त्रासदी को जीवन के घुटन को समान रूप से झेल रही हैं और वे विद्रोह करके हीन भाव से छुटकारा पाना चाहती हैं। स्त्री के दर्द एवं अंदर के बेचैनी और छटपटाहट को महिला रचनाकारों ने पुरुषों की अपेक्षा अधिक सुखद और बेबाक होकर प्रस्तुत किया है। इसी बेबाकीपन की वजह से पिछले तीन दशकों से महिला कथाकारों ने कथा साहित्य में अपनी विशिष्ट पहचान बनाई है।

इस संबंध में डॉ. अमरीश सिन्हा कहते हैं–''समकालीन कथाकारों में नासिरा शर्मा का ऐसा नाम है जो नारी स्वभाव, मनःस्थिति, मनोविज्ञान के साथ–साथ वर्तमान विभिन्न अंचलों एवं क्षेत्रों यहाँ तक कि इतर देश की सामाजिक परिस्थितियों एवं व्यवस्थाओं में भी महिलाओं की दशा एवं सोच का निष्ठापूर्वक सुस्पष्ट चित्रण

---

224 इंसानी नस्ल, नासिरा शर्मा, प्रतिभा प्रतिष्ठान, नई दिल्ली, संस्करण–2015 पृ. 96

प्रस्तुत कर पाने में अदब के साथ लिया जाता है। उनके द्वारा रचित कहानियाँ, नासिरा शर्मा बड़ी सादगी से जीवन के यथार्थ को पाठकों के समक्ष रखती हैं। अंतर्धारा में एक आग्रह अवश्य महसूस होता है कि इंसान ने स्वयं को जीना छोड़ दिया है और बाहर की बनावटी, भौतिक दुनिया के कोलाहल का किसी न किसी वजह से अपनाने में स्वयं को फूला–फूला सा और गौरवान्वित महसूस करता है परन्तु हकीकत यह है कि भौतिकवाद और बाजारवाद के कोलाहल में उसकी निजता लुप्त होती जा रही है और वजूद भटकता जा रहा है। नतीजन उसकी सारी सहजता तेजी से उसके सुख एवं चैन के सारे क्षण छीनती जा रही है। कभी–कभी ऐसा भी संकेत मिलता है कि वह पाषाण युग की प्रवृत्तियों की तरफ अकारण बढ़ रहा है जो सारी उपलब्धियों के बावजूद उसको वह चैन नहीं दे पा रही है जिसका वह सही हकदार है।''[225]

नासिरा जी लिखती हैं कि पुरुष सत्तात्मक समाज बनने से नारी की पराधीनता शुरू होती है और पुरुष यह प्रचार करने लगता है कि नारी स्वभावतः पुरुष से हीन है, वह भोग की वस्तु है, सार्वजनिक जीवन में भाग लेने के योग्य नहीं है। उसका काम चौका–चूल्हा करना और बच्चे पालना भर है। इस दृष्टिकोण का कारण और सार्वजनिक जीवन में नारी के भाग न लेने का कारण समान व्यवस्था है, न कि यह कि नारी जन्म से ही पुरुष से हीन है। बिना समाज–व्यवस्था के बदले नारी की स्थिति को नहीं बदला जा सकता। ऋग्वैदिक काल में नारी पूर्ण रूप से स्वाधीन थी। लोग हल चलाना, पशुपालन, खेती करना, घर बनाना जानते थे। इस समय राजा जनता द्वारा निर्वाचित नायक मात्र था और वह उसे हटा भी सकती थी। समाज में संपत्ति की वृद्धि और उत्पादन के विकास से यह परिस्थिति पैदा हो रही थी कि राज्य सत्ता का जन्म हो और शासक–वर्ग शेष जनता को अपने अधीन रखने के लिए उसका उपयोग करे। प्राचीन गणराज्य जनतांत्रिक थे। उस समय स्त्री–पुरुष में तीव्र असमानता न होने के कारण सामाजिक कार्यों में स्त्रियाँ अधिक भाग लेती थी।[226] पुरुष वर्चस्व वाले समाज में बड़ी चालाकी से नारी को संपत्ति और सजा के उत्तराधिकार से वंचित कर दिया गया। वह पिता की विरासत

---

[225] बोगदे से बाहर, डॉ. अमरीश सिन्हा, संस्करण–2015 पृ. 253

[226] तसलीमा नसरीन : औरत, उत्तरकथा, पृ. 153

भर का एक हिस्सा बनकर रह गई थी। रूढ़ियाँ इस कदर बढ़ीं कि कन्या का जन्म बोझ लगने लगा, उसके जन्म के साथ ही हत्या का प्रचलन शुरू हो गया, उससे जीने का अधिकार तक छीन लिया गया। भ्रूण हत्या इसका विकसित रूप है। तसलीमा नसरीन का कहना है–''स्त्री को डरना एवं लज्जालु होना पुरुष प्रधान समाज ने सिखाया है, क्योंकि भयभीत एवं लज्जालु रहने पर पुरुषों को उस पर अधिकार जताने में सुविधा होती है।''[227]

'खुदा की वापसी' कहानी में फरजाना एक पढ़ी लिखी शिक्षित युवती है। फरजाना का निकाह होने के बाद सुहागरात की रात ही उससे उसका पति कहता है–''मैंने मजहब की सभी कानूनी किताबों को पढ़ा है। मौलवियों से बातें की है। इसलिए मैं चाहता हूँ बात साफ हो सके और आपके दिल में भी कोई खलिश बाकी न बचे.... कायदे से मेहर के पचास हजार रुपये मुझे उस समय अदा करने चाहिए, तब आपका घूँघट उलटने का हकदार बनता हूँ, आपका बदन छूने इसलिए।

जी! फरज़ाना ने बौखलाकर कहा। उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। भाभी ने चलते हुए दूसरी बातें बताई थीं, समझाई थीं। यहाँ तो रूमानी बातों की जगह बड़े नपे–तुले शब्दों में दूल्हा बात कर रहा है। यह कैसी सुहागरात है?

देखिए मगर आप मेहर के रुपये चाहती हैं तो मुझे कोई एतराज नहीं है। हम बिजनेस क्लास वाले है। चेक अभी काटकर आपके हवाले कर सकता हूँ, मगर बात कुछ और है। वह औरत शौहर के लिए बहुत मुबारक होती है जो पहली रात अपने शौहर का मेहर माफ कर दे। वह बड़ी पाकदामन समझी जाती है।''[228]

'खुदा की वापसी' सोचने पर मजबूर करती है कि इस्लाम में शादी एक अनुबंध है। शादी को इस्लामी तौर पर वैध माने जाने के लिए जिन चार चीजों का होना जरूरी माना है। उनमें सबसे पहली है लड़की की मर्ज़ी का जानना कि वह इस शादी के लिए तैयार है या नहीं। दूसरी सबसे जरूरी चीज है निकाह में तय होने वाली 'मेहर'। अन्य दो चीजें मसलन दो गवाहों का होना शायद इतना आवश्यक भी नहीं रह जाता। जब लड़की खुद शादी के लिए राजी हो तो। 'मेहर'

---

[227] तसलीमा नसरीन : औरत, उत्तरकथा, पृ. 187
[228] खुदा की वापसी, नासिरा शर्मा (क.सं.2), संस्करण–2013 पृ. 393

इस अनुबंध का पति द्वारा पत्नी के लिए वह पहला वायदा है, जिसे पूरा करके पत्नी को यह अहसास दिलाना कि मोहब्बत के साथ वह जीवन भर पत्नी की जिम्मेदारियों को पूरा करेगा। मगर वह भी जानता है कि औरत ने शरीयत या धर्म कानूनों के विषय में जानने की कभी कोशिश नहीं की है। वह तो उतना ही जानती है। जितना इस समाज में हमने स्थापित कर रखा है। उसे कड़ाई से मनवाने के लिए उस पर धार्मिक कानून की तथाकथित मोहर लगा दी है। इसलिए वह आसानी से औरत को अपनी गुलाम बनाए रखने की मंशा से तथाकथित धार्मिक कानून का सहारा लेकर मेहर को भी माफ कर लेता है। धर्म–प्राण समाज की इन औरतों की इस बात का इल्म भी नहीं हो पाता कि उसकी जिंदगी के साथ एक धोखा हो गया। समाज की हर पुरानी पीढ़ी के अंदर कूट–कूटकर भरा जाता रहा है कि 'पति के कदमों में ही जन्नत है' औरत अपने साथ हुए छल को समझने के बाद भी पुरुष का मुखर विरोध नहीं कर पाती।

'पत्थर गली' मुस्लिम सामंती परिवेश में एक लड़की के कुर्बान हो जाने की कहानी है। कहानी की केन्द्रीय पात्र फरीदा हर प्रकार से योग्य होने पर भी सही ढंग की पढ़ाई नहीं कर पाती और पारिवारिक शोषण का शिकार होती है। उसका सामंती मानसिकता से ग्रस्त बड़ा भाई उसके जीवन में कुछ भी सुहाना नहीं होने देते। फरीदा अपनी परिस्थितियों के खिलाफ, पारिवारिक शोषण के विरुद्ध विद्रोह करती है, पर इसका कोई नतीजा नहीं निकलता। पुरुष सत्तात्मक मुस्लिम समाज में नारी का विद्रोह पत्थर पर सर पटकने के समान है।

स्त्री विमर्श एवं स्त्री जीवन

आज का युग महिला सशक्तिकरण का युग है। जब से महिला सशक्तिकरण वर्ष मनाया गया, तब से स्त्री–विमर्श केंद्र में आने लगा। यह अपनी अर्थवत्ता में बहुत ही गहन है। इसलिए जनसाहित्यकार, पत्रकार, व्यवसायी, कॉरपोरेटकर्मी इस दिशा में सजग है। विज्ञापनदाता, समाज सेवक, कार्यकर्ता, मीडिया, फिल्म आदि हर कोई सदियों से पीछे धकेल दी गई शोषित, दमित स्त्री को केन्द्र में लाकर, उस पर पुनः विचार करने की तैयारी में है।

'स्त्री–विमर्श' शब्द को सही ढंग से समझने के लिए इसे सर्वप्रथम दो भागों में विभक्त करना होगा 'स्त्री' तथा 'विमर्श'। 'स्त्री' वैदिक संस्कृत शब्द है। 'ऋग्वेद'

(4–6–7) में इसका सर्वप्रथम प्रयोग किया गया था। 'स्त्री' शब्द की व्युत्पत्ति के अनुसार "स्त्री–सूत्री', जन्मदात्री अर्थात् वह परिवार की सूत्रधारक होने से स्त्री कही जाती है।"[229] 'स्त्री' शब्द 'सत्य' धातु से बना है। जिसका अर्थ लज्जायुक्त होना लिया जाता है। पाणिनी ने 'सत्य' का अर्थ शब्द 'करना' लिया। पतंजलि ने कहा, नारी को स्त्री इसलिए कहा जाता है कि गर्भ की स्थिति उसके भीतर होती है। उनकी एक दूसरी व्युत्पत्ति के अनुसार शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध का समुच्चय, स्त्री है। पुरुष के ज्ञानेन्द्रियों की तृप्ति नारी से होती है। इसलिए उसे स्त्री कहा जाता है। पति का सम्मान करने वाली अथवा पूज्य होने के कारण नारी को महिला भी कहा जाता है। हिंदी में 'विमर्श' के लिए समानार्थी शब्दविचार, विवेचन, परीक्षण, समीक्षा, तर्क आदि दिये गये हैं। प्रख्यात आलोचक नामवर सिंह के शब्दों में "विमर्श' हिंदी में मिशेल फूको के 'डिस्कोर्स' का अनुवाद है।"[230]

स्त्री–विमर्श की अर्थवत्ता एवं सार्थकता पर जोर देते हुए विवादास्पद रचनाकार तस्लीमा नसरीन साफ शब्दों में कहती है कि "हमारा विरोध पुरुष जाति से नहीं है। विरोध है पुरुष की उस सामंती मनोवृत्ति से, जो नारी को दासी से अधिक दर्जा नहीं देती।"[231] मृणाल पाण्ड्रेय लिखती हैं–"स्त्री के अस्तित्व को, इसके पुरुष से जुड़े संबंधों तक ही सीमित करके न देखा जाए बल्कि पुरुष की ही तरह उसे भी मानवता का एक भिन्न तथा अनिवार्य और पूरक तत्व माना जाए।"[232]

स्त्री–विमर्श एक आधुनिक विमर्श है, जो पुरुष समाज के वर्चस्व के बरक्स नारी अस्मिता, नारी जीवन की एषणा और व्यक्तित्व निर्मित दायरों की चर्चा करता है। स्त्री–पुरुष संबंधों में समयानुरूप बदलाव आये हैं। शिक्षा, रोजगार, वैश्विक विकास व व्यावसायिक अभिरूचियों के कार्य–कारण से और महिला सशक्तिकरण के उठे स्वरों की बदौलत।

स्त्री के बारे में बेबल के विचार हैं–"औरत और सर्वहारा दोनों ही दलित हैं। दोनों के सामाजिक जागरण की संभावना यांत्रिक सभ्यता में अधिक पायी जाती है।

---

229 व्युत्पत्ति कोश, कृ.पा. कुलकर्णी, पृ. 804

230 हंस, नामवरसिंह, दलित विशेषांक, वर्ष 2003, पृ. 195

231 तस्लीमा के हक में, मोहनकृष्ण बोहरा, पृ. 100

232 मृणाल पाण्डेय : स्त्री देह की राजनीति से देश की राजनीति तक, पृ. 21

औरत की समस्या उसकी भ्रम की क्षमता की समस्या में न्यूनीकृत की जा सकती है किंतु आधुनिक विकसित यांत्रिकी ने क्षमता के स्तर पर भी स्त्रियों को पुरुषों के बराबर खड़ा कर दिया है।''[233]

स्त्री–विमर्श की लड़ाई आधी दुनिया को मनुष्य का दर्जा दिलाने की लड़ाई है। उसके मनुष्यत्व को स्वीकारना आज मानवता का सबसे बड़ा सवाल है। आज भी मानव की अवधारणा में स्त्री और पुरुष दोनों को समान रूप से शामिल नहीं किया जाता। जान–बूझकर स्त्री को इससे अलगाने की स्थिति खत्म नहीं हुई है। करीब सौ साल पहले 'नोरा' ने हेल्मर से पूछा, ''तुम क्या मानते हो मेरा सबसे पवित्र कर्त्तव्य क्या है?' और जब हेल्मर ने उत्तर दिया तुम्हारा अपने प्रति और बच्चों के प्रति कर्त्तव्य। तो 'नोरा' इस विचारधारा से असहमत हुई। अपनी असहमति प्रकट करती हुई वह बोली–'मेरा एक और कर्त्तव्य है, उतना ही पवित्र अपने प्रति मेरा कर्त्तव्य मैं मानती हूँ कि सबसे पहले मैं मनुष्य हूँ। उतनी ही जितने तुम हो या हर सूरत में मैं वह बनने की कोशिश तो करूँगी ही। मैं अच्छी तरह से जानती हूँ तोखालड के ज्यादातर लोग तुमसे सहमत होंगे, किताबों से तुम्हें इसका परवाना मिला है, लेकिन अब मैं, ज्यादातर लोग जो कहते हैं और जो किताबों में लिखा है। उससे असंतुष्ट नहीं हो पाऊँगी, मुझे चीजों पर खुद सोच–विचार करना होगा और उन्हें समझने की कोशिश करनी होगी।''[234]

पूरी दुनिया में स्त्री–विमर्श नये ओज से जारी है। इस ओज में सांस्कृतिक धैर्य के लिए अभी भी बहुत जगह खाली है। स्त्री–विमर्श बहुआयामी है। दुनिया के विभिन्न इलाकों, समुदायों और वर्गों में इसके आशय एक ही नहीं हैं। यद्यपि इनकी अंतर्वस्तुओं में बहुत हद तक समानताएँ हैं। और इनकी अपनी–अपनी इलाकाई, सामुदायिक और वर्गीय विशिष्टताओं को सामाजिक विशिष्टताओं के संदर्भ से जोड़कर समझा जा सकता है।

डॉ. ओम निश्चल जी कहते हैं–''साहित्य को कभी समाज का दर्पण माना जाता रहा है, आज वह न केवल दर्पण है बल्कि अपने समय का क्रिटीक बन गया

---

233 देबल द्वारा, द सेकेण्ड सेक्स, पृ. 36

234 जर्मेन गीयर : द फिमेल पुनक का हिंदी अनुवाद : विद्रोही स्त्री, पृ. 20

है। स्त्री–समाज में जो तब्दीलियाँ आ रही है, उनकी एक वजह उनका आर्थिक रूप से स्वावलंबी होना भी है। आज वे विभिन्न कार्यक्षेत्रों में बड़ी से बड़ी जिम्मेदारियाँ निभा रही हैं। वे पुरुषों के डिक्टेट पर निर्भर नहीं हैं। एक स्वतंत्रचेता नागरिक और निर्णायक स्थिति में वे आ पहुँची हैं। परिवर्तन के इस ग्राफ को साहित्य में हम साफ–साफ देख सकते हैं। हम किस्सों–कहानियों में उभरते हुए समाज को देखें तो यह पाते हैं कि जहाँ एक जमाने में स्त्रियाँ ऊँची आवाज में बोल नहीं सकती थीं। आज वे अपनी अभिव्यक्ति को दो टूक तरीके से प्रकट कर रही हैं।''[235]

शाल्मली के मुँह से स्त्री–विमर्श की अपनी अवधारणा को नासिरा शर्मा इन शब्दों में व्यक्त करती हैं–''मैं पुरुष विरोधी न होकर अत्याचार विरोधी हूँ। अत्याचारी का कोई नाम और धर्म नहीं होता, तो भी समूह या इकाई में वह हमारे सामने होता है और उसी अत्याचारी से हमें जूझना है। वे मानती हैं कि समस्या केवल पति से निपटने और उससे मुक्त होने से हल होने वाली नहीं है। सही मायनों में स्त्री की मुक्ति और स्वतंत्रता समाज की सोच और स्त्री की स्थिति बदलने में है।''[236]

शाल्मली का दुःख सामान्य स्त्री के शोषण और प्रताड़ना के दुःख से भिन्न है। बहुत महीन है, उसके तर्क भी सामान्य नहीं है। वह बाह्य जगत में जीतकर भी घर में हारी है। पर उसकी इस हार में भी जीत की संभावना छिपी है। स्त्री आज जिन सवालों के जवाब चाहती है। उनकी जमीन कितनी गहरी और ठोस है, साथ ही समाज के साथ सीधी मुठभेड़ करने का कितना साहस उसमें है? स्त्री के पास यदि सुदृढ़ इतिहास या संगठन नहीं है तो कम से कम उसकी लड़ाई की भावी रूपरेखा तो होनी चाहिए। भले ही वह अपनी सार्थकता नहीं पहचान पाई है किंतु नासिरा शर्मा की कहानियाँ अनुभव के आधार से निकलकर कथा जगत में अवतरित वे एहसास हैं जो स्त्रीवाद और स्त्री–विमर्श को समझने की दिशा में महत्वपूर्ण है। इन्होंने एक सौ से अधिक कहानियाँ लिखी हैं, जो समाज के विभिन्न तबकों, मध्यम वर्ग, अभिजात्य वर्ग और न्यून–मध्यम वर्ग की सामाजिक सोच एवं अलग–अलग शैक्षणिक आर्थिक स्वर के समाज में स्त्रियों की दशा, दिशा, सोच तथा उनके बारे में

---

[235] शब्द और संवेदना की मनोभूमि, सं. ललित शुक्ल, पृ. 303

[236] नासिरा शर्मा–शाल्मली, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, संस्करण–2012 पृष्ठ–89

पुरुष की सोच का खुलासा करती है। चाहे उनकी कहानियाँ, पत्थर गली, संगसार, शामी कागज, इब्ने मरियम को लें या फिर दूसरा ताजमहल, तुम डाल–डाल हम पात–पात और गोमती देखती रही, प्रोफेशनल वाइफ, पंच नगीना वाले, गली घूम गई, संदकूची को लें, ये कहानियाँ वस्तुतः मछियारे का एक ऐसा जाल है जिसमें संवेदना के समंदर से पकड़ी ऐसी अनुभूतियों का बयान है जो मौलिक भी है और यथार्थ की जमीन पर लहलहाती सृजनात्मक कल्पना का संसार भी है।

'ताबूत' में निम्नवर्गीय मुस्लिम परिवार की अभावपूर्ण जिंदगी और अविवाहित लड़कियों के पारिवारिक शोषण का चित्रण है। फहमीदा, सायरा और सालेहा तीन बहनें हैं जिनके सपने, अरमान और जवानी के सुख पारिवारिक शोषण की शिला पर टकराकर चूर–चूर हो जाते हैं। उनकी शादियाँ नहीं हो पातीं, क्योंकि वह ठहरी इमाम की औलाद, खरी सैयद! माँ–बाप लड़के की नौकरी और पढ़ाई से कहीं ज्यादा उसकी हड्डी ओर खानपान देखते हैं। लड़कियाँ सोचती हैं, "उस आँगन से होली नहीं, पाँच जनाजे निकलेंगे। जब तक वे पाँचों जिएँगी, नौहा पढ़ेंगी, जब तक रेकॉर्ड धिसकर टूट न गए, वह अपना फर्ज निभाती जाएँगी।.... और फिर ठहरी सैमदानी, स्कूल में पढ़ने जाएँ न घर से कदम निकाले। ऐसे करम करेंगी तो बाबा की नाक नहीं कट जाएगी? उनका काम तो सिर्फ गुजरी हस्तियों को बार–बार जिंदा करके आँसू बहाना है। यही आँसू उनकी पवित्रता की निशानी है।"[237]

'गूँगा आसमान' कहानी में मेहरअंगीज अपने पति की कैद से उन औरतों को मुक्त करना चाहती है जिन्हें वह जबरदस्ती ले आया है। कथा में एक प्रसंग है "मर्द के जाते ही घर सन्नाटे में डूब गया। मेहरअंगीज गुस्से से काँपती उसी तरह समावार के पास बैठी रही। पूरी जिंदगी मर्दों को बाहर मुँह मारते देखती आयी थी। इन बेवफाईयों की बातें सुनते–सुनते उसके कान आदी हो चुके थे, मगर यह नई रीति थी कि सड़क और गली कूचे में फिरती बेकस, मजलूम औरतों को विधवाओं और बेसहारों का सीनाजोरी से उठाकर घर में डाल उनसे निकाह पढ़वाकर अपने गुनाहों को सवाब में बदल अनैतिक को नैतिक बना, गैर कानूनी हरकत को कानून के दायरे में डाल रोज जन्नत में घूमने का दावा करना और हूरों को बेमौत मारना

---

[237] पत्थर गली, नासिरा शर्मा (क.सं.1), राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, संस्करण–1986 पृ. 248

इनका धर्म ईमान हो गया है। कहाँ गया वह बेलौस मर्द का जज्बा?''[238]

'सहदा नर्वद' में दारीवश का बचपन सौतेले पिता की छत्रछाया में उपेक्षित गुजरा है। वह अपने से उम्र में काफी बड़ी मरजिया से विवाह करता है। उसकी बीमारी में साथ देता है। उसके जीते जी दूसरा ब्याह नहीं करता। मरजिया की मृत्यु के बाद वह शोले से विवाह करता है जो उससे उम्र में बीस वर्ष छोटी है। उसे लगता है शोले उसके पड़ोस में रहने वाले जवान आहंग से प्यार करती है, वह शोले और आहंग को एक करना चाहता है। तब शोले बहुत नाराज हो जाती है और औरत की अहमियत समझाते हुए दारीवश से कहती है, ''नहीं, अब मुझे कहीं नहीं जाना है। बाबा ने अपनी जायदाद समझकर मुझे बेंच दिया। आपने अपनी मिल्कियत समझकर मुझे दान कर दिया और मैं मुझे.... यहीं रहकर वास्तविकता का मुकाबला करना है। यथार्थ से अपनी रक्षा करनी है।''[239]

'बिलाव' कहानी में सोनामाटी जो लोगों के घरों में काम करती है। उसे दो बेटियाँ हैं। घर में बेटी का पिता ही उसके साथ बलात्कार करता है।

'खुदा की वापसी' में फरज़ाना नामक एक शिक्षित युवती जो और आगे पढ़ना चाहती है। घर के लोगों के दबाव में शादी कर लेती है। शादी की पहली ही रात उसका शौहर जुबैर कहता है कि वह जब तक मेहर की रकम माफ नहीं करती वह उसे हाथ नहीं लगायेगा, वह मेहर की रकम तो माफ कर देती है। पर यह मुस्लिम कानून के खिलाफ है, जिसमें फरजाना अपना ही एक हक मारती है, इसी मुद्दे को लेकर बाद में दोनों में अलगाव हो जाता है।

नासिरा जी कहानियों के संबंध में प्रताप दीक्षित जी कहते हैं–'शताब्दी के अंत में वही पुराना झूठ' में लेखिका अपनी चार कहानियों (बड़े पर्दे का खेल, दूसरा ताजमहल, कनीज बच्चा और वही पुराना झूठ) की पृष्ठभूमि के माध्यम से एक बार फिर स्त्री–विमर्श की व्याख्या करते नजर आती है। इस संबंध में यह भी विचार आवश्यक है कि प्रत्येक मनुष्यों की एक निजी भावनात्मक दुनिया होती है। उस बंद दुनिया के दरवाजे खोलने की क्षमता केवल रचनाकार में होती है। आदमी की रोजी,

---

[238] संगसार, नासिरा शर्मा (क.सं.2), प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–1993 पृ. 159

[239] शामी कागज, नासिरा शर्मा (क.सं.1), सत्साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–1997 पृ. 141

रोटी, छत की समस्या के साथ ही इस बाजार बनती जाती दुनिया में मनुष्यों के लगातार अकेले पड़ते जैसे–भावनात्मक सरोकारों की लेखक उपेक्षा नहीं कर सकता। रचनाकार ही इस झूठ से पर्दा उठाता है जिसमें एक छत के नीचे रहते दो इंसान बँटी हुई जिंदगी जीने के लिए किस प्रकार विवश होते हैं। इस अकेलेपन को दूर कर सकने में क्या स्त्री–विमर्श की 'पिपहिरी की आवाज' दुनिया में किसी भी कोने में समर्थ हो सकी है। वैश्विक परिप्रेक्ष्य में पूरी दुनिया में स्त्रियों की स्थिति कमोवेश एक तरह की है। अलग होना एक क्षणिक राहत तो देता प्रतीत हो सकता है परन्तु रिश्तों के आकर्षण की चाहत तो खत्म नहीं कर सकता। इस संदर्भ में रचनाकार का यह कहना मायने रखता है कि स्त्री–विमर्श के मद्देनजर क्या इस 'अहसास को समझने की कोशिश होती है कि पति को भी ऐसा साथी चाहिए जो उसके तनाव और बाहरी दुनिया के दबाव को कम करने में सहयोग दे।

इस दौर में नासिरा शर्मा पहली लेखिका नजर आती है जिन्होंने स्त्री–पुरुष संबंधों पर इस तरह विचार किया है कि–"यह समाज इकहरा नहीं है। इसकी बनावट में औरत–मर्द दोनों का साझा है। यह अलग बात है कि अपने ही बनाए सामाजिक नियमों द्वारा अगर औरत अस्सी प्रतिशत शोषित है, तो मर्द भी साठ प्रतिशत शोषित हैं। एक इंसान को दूसरे इंसान के सामाजिक रिश्तों के नाम पर कैंदी बनाने का न तो अधिकार होना चाहिए और न ही भावना के प्राकृतिक प्रवाह पर अंकुश लगाना उचित है। संबंधों के त्रिकोण की मनोवैज्ञानिक गिरह को इतनी गहराई और ईमानदारी से भावनात्मक आधार पर खोलने की कोशिश पहली बार दिखाई देती है। यह आलेख तार्किक, सामाजिक, भावनात्मक दृष्टि से साहित्य और समाज को विचार के लिए जमीन का विस्तार देता है। प्रचारित स्त्री–विमर्श के अंतर्विरोधों और विडम्बनाओं को उघाड़ता है। परन्तु यह भी सच है कि लेखिका इसके लिए किसी सार्थक विकल्प को देने में कतराती है।"[240]

अतः निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है नासिरा शर्मा की कहानियों को स्त्रीवादी लेखन के तहत रखा जा सकता है। स्त्री–पुरुष दोनों को एक–दूसरे को सम्मान देना है। भावनाओं की कद्र करनी है। परिवार के भीतर रहकर औरतें अपने

---

[240] अग्निपथ की राही, नासिरा शर्मा, सं. सुदेश बत्रा, संस्करण–2013 पृ. 82–83

स्वतंत्र वजूद को कैसे बचाए–बनाए रखें? लेखिका पूरी शिद्दत से उस सच के साथ खड़ी है कि परिवार को बनाए रखकर भी स्त्रियाँ स्वत्व को, सम्मान की गरिमामय स्थिति को पा सकती है, यदि वे स्वयं को बैसाखी न बनने दे पुरुष की। उन्हें रिश्तों के भीतर छाए ढोंग और खोखलेपन को नकारना है। पुरुषों हेतु स्वयं को घिसटन नहीं बनाना है, न ही मात्र भावुकता की जीती अनुचित भाव से पुरुषों की कुंठा का पोषण करना है। उन्होंने स्त्री–विमर्श को अपेक्षाकृत ज्यादा व्यापक रूप में देखा है। और यह प्रयास किया है कि इनके लेखन से स्त्री–पुरुष संबंधी को सही परिप्रेक्ष्य में समझने में मदद मिले। उनमें जिन सामाजिक कारणों से वैमनस्य बढ़ता रहा है। उन्हें कैसे संतुलित किया जाये। इस तरफ इनकी भी चिंता दिखलाई पड़ती है। संक्षेप में यह माना जा सकता है नासिरा शर्मा जी स्त्री–विमर्श को अपेक्षाकृत ज्यादा सही और असंतुलित रूप में प्रस्तुत किया है।

5. सांस्कृतिकता

'संस्कृति' शब्द से 'ठक्' प्रत्यय लगकर 'सांस्कृतिक' शब्द बनता है। सांस्कृतिक चेतना अर्थात् संस्कृति से सम्बन्धित चेतना। कोई भी राष्ट्र अपने किसी वैशिष्ट्य के कारण ही विश्व–समाज में अपनी पहचान बनाता है और समादृत होता है। भारत देश मानवीय चिन्तनधारा और जीवन–विषयक सर्वतोमुखी उद्दात्त दृष्टिकोण के कारण एक विशेष जीवन–पद्धति का आविष्कर्ता और प्रवक्ता रहा है। राष्ट्रीय जीवन में लम्बे काल–प्रवाह में उसने जो सांस्कृतिक चेतना अर्जित की है वह मानवता की उच्च मनोभूमि और विकासशील सामाजिक सभ्यता की कहानी है। अनेक विदेशी जातियों के आक्रान्ताओं ने भौतिक दृष्टि से उसे जितना झकझोरा है, जीवन–पद्धति और दृष्टिकोण के स्तर पर अपने निर्धारित जीवन मूल्यों का परीक्षण कर उसने स्वयं को उतना ही गतिशील बनाये रखा है। भारतीय संस्कृति प्राणीमात्र के लौकिक एवं पारलौकिक कल्याण की बात करती है। यह आत्मा, मन, बुद्धि एवं कर्म के विकास का मार्ग प्रशस्त करती है। इसी कारण जिसका ज्ञान–बोध प्रखर होगा, उसकी आत्मिक शक्ति उतनी ही विकसित होगी और उसकी सांस्कृतिक चेतना उतनी ही उद्बुद्ध।

सांस्कृतिक चेतना व्यक्तिगत स्तर पर अनुभूत होकर भी 'स्व' से ऊपर उठकर सामाजिक हित की बात करती है। इसी कारण एक साहित्यकार सृजन के

दौरान 'स्व' का इस तरह विस्तार करता है कि सम्पूर्ण विश्व के सांस्कृतिक तन्तु उसमें समाविष्ट हो जाते हैं। वह सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त एक तत्त्व का दर्शन करने लग जाता है। यही चेतना का सर्वोत्कृष्ट रूप है, जिसे सांस्कृतिक चेतना कहा जा सकता है।

परन्तु साहित्य–सृजन में यह चेतना किस प्रकार से उभर कर सामने आती है, इस पर विचार करना यहाँ प्रासंगिक हैं। चूँकि साहित्यकार समाज का चित्रण करता हुआ उसमें 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' की सृष्टि करता है, अतः प्रत्येक साहित्यिक रचना आवश्यक रूप से सांस्कृतिक भूमिका अदा करती है परन्तु इसकी अभिव्यक्ति साहित्य के तीनों पक्षों– लेखक–कृति–पाठक के आधार पर तीन स्तरों पर होती है। इन तीनों पक्षों या कहें उपकरणों के माध्यम से ही कोई भी साहित्यिक कृति सांस्कृतिक चेतना की संवाहिका बनती है।

साहित्य समाज का दर्पण है और प्रत्येक समाज की अपनी एक विशिष्ट संस्कृति रही है। इसलिए समाज के चित्रण के साथ–साथ संस्कृति स्वतः ही साहित्य में परिलक्षित हो जाती है। नासिरा शर्मा समकालीन हिन्दी साहित्य की एक सशक्त हस्ताक्षर हैं। उनके उपन्यास साहित्य में विभिन्न सन्दर्भों व कथानकों के अन्तर्गत उनके सामाजिक बोध के साथ–साथ सांस्कृतिक बोध अपने आप ही चित्रित हो आया है। उनकी बात कहने की शैली ही कुछ इस प्रकार की है कि उनके कथ्य की सम्प्रेषणीयता देखते ही बनती है। नासिरा जी घटनाओं का वर्णन इस प्रकार से करती है कि पाठक स्वतः लेखकीय मन्तव्य को समझ जाता है। नासिरा जी परिवेशगत घटनाओं का वर्णन तत्कालीन सन्दर्भों में इस प्रकार करती हैं कि पाठक स्वयं आत्मावलोकन व अनुशीलन करे कि परिस्थिति विशेष में पात्र विशेष का व्यवहार व लोगों की प्रतिक्रिया समुचित थी अथवा नहीं। सीधे–सीधे कोई निर्णय वे पाठकों के सम्मुख नहीं रखती हैं। वे पाठकों को इस मुहाने पर लाकर खड़ा कर देती हैं ताकि वे स्वयं अच्छे–बुरे का निर्णय करे तथा स्वयं के साथ–साथ औरों को भी प्रेरित करे, जागरूक करे। जैसा कि 'ज़िन्दा मुहावरे' उपन्यास के सन्दर्भ में लेखिका द्वारा कहे गये उनके शब्दों को यहाँ उद्धृत करना सार्थक प्रतीत होता है। साथ ही उनकी प्रत्येक औपन्यासिक रचना के लेखकीय उद्देश्य पर भी सही घटित होता है– "मेरी कोशिश इस उपन्यास के जरिए सिर्फ इतनी है कि मैं 'जिन्दा

मुहावरे' के पाठकों को उस सेतु पर लाकर खड़ा कर सकूँ जो एक इन्सान से दूसरे इन्सान तक जाता है और जिसके नीचे मोहब्बत का समन्दर ठाठें मारता है।"[241]

नासिरा शर्मा प्रणीत 'शाल्मली' नारी वैशिष्ट्य से परिपूर्ण एक महत्त्वपूर्ण औपन्यासिक कृति है। 'शाल्मली' एक शिक्षित, पढ़ी–लिखी, संस्कार सम्पन्न तथा सद्विचारों वाली नारी है। वह बड़ी अफसर होने के बावजूद अफसराना अंदाज से पूर्णतः दूर है। अपने दफ्तर के साथ–साथ परिवार को भी बखूबी संभालती है परन्तु उसका पति नरेश उसके इस स्वरूप को स्वीकार नहीं कर पाता है। अपनी गलत आदतों में लिप्त होकर वह शाल्मली को ही तरह–तरह से प्रताड़ित करता रहता है। इस सबके बावजूद भी वह पूर्णतः शान्त रहकर तालमेल बिठाकर चलने का प्रयास करती है। वह अपने ऊपर पुरुष सत्ता को हावी नहीं होने देती है। साथ ही रिश्तों को तोड़ने की बजाय वह रिश्तों को संजोने, संभालकर चलने के लिए प्रेरित करती है। इसी कहानी से उपनिबद्ध इस उपन्यास में पाठक विभिन्न सांस्कृतिक तन्तुओं से भी रूबरू होता हुआ आगे बढ़ता है। इस उपन्यास में भारतीय समाज में चली आ रही परम्परागत सोच कि 'कन्या निश्चित ही पराया धन होती है' तथा 'लड़का–लड़की दोनों समान होते हैं' इस आधुनिक सोच इन दोनों के मध्य पारस्परिक संघर्ष दिखलाया है। साथ ही आधुनिक समाज को एक स्वप्न भी दिखलाया है कि एक समय ऐसा भी आयेगा जब वह पुरानी व महत्त्वहीन मान्यताओं से निजात पाकर प्रगतिशील एवं सकारात्मक सोच के साथ आगे बढ़ेगा और यह सब होगा शिक्षा के प्रसार के बलबूते। जब शाल्मली की माँ अपने पति से कहती है कि लड़की पराया धन है, पति के घर सुख से रहे, यही सबसे बड़ा आशीर्वाद है, बाकी तो.....। तब शाल्मली के पिताजी उससे कहते हैं कि तुम नहीं बदलोगी, श्यामल, आज औरत का कर्तव्य पत्नी बनने तक सीमित नहीं है।

शाल्मली के माध्यम से ही लेखिका पुनः वर्तमान शिक्षा प्रणाली पर प्रहार करती है। शाल्मली अपनी सहकर्मी 'सरोज' के साथ पति–पत्नी जैसे मानवीय सम्बन्धों पर चर्चा करती हुई कहती है कि "मैं आजकल एक बात सोचती रहती हूँ कि हमारी इस शिक्षा से क्या लाभ, जो हममें सहनशक्ति समाप्त होती जा रही है।

---

241 'ज़िन्दा मुहावरे', नासिरा शर्मा, वाणी प्रकाशन,, नई दिल्ली, संस्करण–2012 पृ. 58

एक तरफ हम बड़ी–बड़ी डिग्रियों और मोटे–मोटे शोध–ग्रन्थों से दबे जा रहे हैं, दूसरी तरफ मानवीय सम्बन्ध की पकड़ हमारे हाथों से छूटती जा रही है। उसके लिए समय निकालना समय का दुरुपयोग लगता है। ऑफिस, घर हर स्थान पर दूसरे को समझने की चेष्टा के स्थान पर अपने को लादने का जोर बढ़ गया है, सो दूसरे को अपना दर्पण समझ लेते हैं। छाया दिखी, तो ठीक, वरना दर्पण उठाकर पटक दिया। जहाँ भावना की जरुरत है, वहाँ व्यावहारिक बनेंगे और जहाँ व्यावहारिक बनना है, वहाँ भावुक !'' [242]

नासिरा जी ने 'ठीकरे की मंगनी' शीर्षक से समाज में बोसीदा हो चुकी रस्मों को छोड़कर आगे बढ़ने की भी प्रेरणा दी है। 'खालिदा, आज से यह लड़की मेरी हुई। कानपुर वाली खाला ने उसकी पैदाइश के फ़ौरन बाद गन्दगी से भरे ठीकरे पर चांदी का चमचमाता रुपया फेंककर कहा था। "यह 'टोटके' की रस्म थी, ताकि लड़की जी जाए, इसके ददिहाल में तो लड़कियां जीती ही न थीं। शाहिदा ने पैदा होते ही उसे गोद ले लिया था, मगर यह टोटके की रस्म सच पूछो, 'ठीकरे की मंगनी' में बदल डाली थी।"[243]

लेकिन जब महरुख़ के मंगेतर रफ़त भाई ने महरुख़ से शादी, पढ़ाई के बाद में करने को कहा और महरुख़ को भी बिना शादी किये अपने साथ दिल्ली ले जाकर पढ़ाई करवाने के लिए कहा। तब एक सामाजिक संदेश देते हुए महरुख़ के अब्बू दुःखी मन से अपनी बेगम से कहते हैं कि "इसलिए अब्बा मरहूम बचपन में तय शादियों के खिलाफ़ थे। एक बन्दिश–सी हो जाती है। ज़बान और क़ौल देकर आदमी फंस जाता है। लड़के का अच्छा–बुरा निकलना सब क़िस्मत पर छोड़ दिया जाता है। मेरा कहने का मतलब है, इस चक्कर में अच्छे रिश्ते भी लौट जाते हैं।"[244]

इसी तरह रोज़े के पश्चात् मस्जिद में इफ़तारी भेजने का इंतजाम महरुख़ की माँ खालिदा करती है। यह इफ़तारी भेजने की परम्परा लम्बे समय से ज़ैदी खान–दान में चली आ रही है लेकिन महरुख़ बिलकुल भी इसके पक्ष में नहीं है। वह एक पढ़ी–लिखी आधुनिक विचारों से युक्त महिला है। उसका मानना है कि

---

[242] 'शाल्मली, नासिरा शर्मा, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, संस्करण–2012 पृ. 36

[243] 'ठीकरे की मंगनी', नासिरा शर्मा, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2013 पृ. 17

[244] 'ठीकरे की मंगनी', नासिरा शर्मा, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2013 पृ. 25

व्यक्ति को परिस्थिति अनुकूल निर्णय लेने चाहिए। इसीलिए अपने परिवार की आर्थिक दशा के लिए वह अत्यधिक चिन्तित दिखाई देती है। वह अपनी माँ से कहती है– "घर की ख़स्ताहाली पर आप लोगों का ध्यान नहीं जाता है। दिन–ब–दिन छतों की हालत गिरती जा रही है। दो साल से पिछला दालान टपक रहा है। उसे पटवाने की जगह कभी कोलतार, कभी प्लास्टिक डलवा दी जाती है, मगर रमजान में पचास लोगों की 'अफ़तारी' जरूर मस्जिद में भेजी आपने, जबकि सिर्फ़ दस लोगों की 'अफ़तारी' भेजने से काम चल जाता।"[245]

इस प्रकार सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्तर पर मानवीयता को झकझोर कर रख देने वाला नासिरा शर्मा का यह बहुत ही मार्मिक साहित्य है जो बताता है कि किसी प्राणी को भले ही उसकी जड़ों से दूर कर दिया जाये पर उससे उसका आत्मिक विलगाव संभव नहीं है और यही वह अदृश्य शक्ति है जो इंसान को इंसान से जोड़कर रखती है।

6. आर्थिकता

नासिरा शर्मा के लेखन का वैशिष्ट्य यह भी है कि इन्होंने केवल धर्म अथवा उपासना पद्धति के आधार पर साम्प्रदायिकता को सीमित अर्थ में नहीं देखा है। बल्कि समाज में विद्यमान आर्थिक स्तर पर वर्ग विभेद को भी चित्रित किया है। साम्प्रदायिकता के संबंध में डॉ. इकरार अहमद लिखते हैं–''सांप्रदायिकता का जिन्न बोतल से बाहर निकालना बहुत आसान है। लेकिन उस पर नियंत्रण रखना अत्यन्त कठिन है। सांप्रदायिकता की बात जब भी भारतीय संदर्भ में आती है तो स्पष्ट रूप से हिंदू और मुस्लिम दो शब्द मस्तिष्क में आते हैं। जब हम इनको एक स्थान पर रखकर सजाते–संवारते हैं तो हमें गंगा–जमुनी तहजीब और भारतीय प्रगति का मार्ग दिखाई देता है। जब हम इनको अलग–अलग रूप में देखने का नजरिया बना लेते हैं तो बीसवीं सदी की सर्वाधिक वीभत्स दुर्घटना भारत–पाकिस्तान विभाजन के दृश्य देखने पड़ते हैं। दोनों समुदायों की दूरियाँ हमारे लिए यक्ष प्रश्न है।''[246]

आर्थिक समस्याएँ

---

[245] 'ठीकरे की मंगनी', नासिरा शर्मा, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2013 पृ. 35

[246] नासिरा शर्मा एक मूल्यांकन, सं. फीरोज अहमद, पृ. 309

राष्ट्रीय एकता आज के समय की सबसे बड़ी आवश्यकता है। इस एकता के लिए आवश्यक है आर्थिक समानता। आर्थिक प्रश्नों पर हम इतने स्वार्थी हो जाते हैं कि किसी दूसरे व्यक्ति के मुँह के निवाले को भी छीनने से परहेज नहीं करते हैं।

आर्थिक समस्या के कारण आज पारिवारिक जीवन में मनुष्य को भय, ग्लानि, शोक, चिंता का सामना करना पड़ता है। वह निरंतर पूँजीपति वर्ग के सामने अपने आप को निम्न महसूस करता है। इनके कहानियों में धार्मिक परिस्थिति ने परिवार के पिता–पुत्र, भाई–बहिन, पति–पत्नी, माता–पुत्री, बहिन–बहिन, भाई–भाई तथा दो मित्रों के पारस्परिक संबंधों में स्वार्थ भावना तथा आर्थिक स्तर प्रभेदों में अंतर की समस्या सर्वाधिक रही है। अर्थ की न्यूनता ने भूख एवं चिकित्सा के अभाव से अकाल मृत्यु, शिक्षा में अवरोध, अपराध, प्रवृत्ति, बाल–विवाह तथा संतानोत्पत्ति बाधा आदि समस्याओं को प्रोत्साहन दिया है। साथ ही किसी गरीब दुखिया स्त्री के चरित्र पर कलंक लगाया है। कहीं कर्ज ने पति–पत्नी के संबंधों को तनावग्रस्त एवं कटु बनाया है। कहीं पुत्री को उसके दायित्वों ने उसे विवाह करने से रोका है। इसके अतिरिक्त धनाभाव ने परिवारों को अव्यवस्थित किया है तो कहीं आदर्शों का खण्डन किया है।

राष्ट्र या समाज की उन्नति अर्थ पर ही निर्भर होती है। अर्थ के कारण ही मनुष्य सुखों तक पहुँच सकता है। आर्थिक विकास के बिना समाज तथा राष्ट्र में परिवर्तन असंभव है। ''विभिन्न सामाजिक संघर्षों, राजनीतिक समस्याओं एवं क्रांतियों का मूल कारण प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अर्थ ही होता है।''[247]

स्वातंत्र्यपूर्व काल में ब्रिटिशों ने भारत की अर्थव्यवस्था को विकसित होने से रोका, वहीं उन्होंने सामाजिक संगठन तथा भारतीयों के सामाजिक दृष्टिकोण पर भी गहरा आघात किया। परंपरागत आत्मनिर्भर ग्रामीण समुदाय जो कार्यशील था और रीति–रिवाजों से शोषित होता था, उसको बुरी तरह ध्वस्त कर दिया। अंग्रेज शासन के पश्चात् समाज अर्थ के बल पर दो वर्गों में विभाजित हो गया। पहला वर्ग अमीर या उच्च वर्ग जिसे प्राचीनकाल में शोषक कहा जाता था और दूसरा निम्न या शोषित वर्ग। धीरे–धीरे इन दोनों के बीच एक तीसरे वर्ग का उदय हुआ है, जो

---

[247] डॉ. पुष्पा सतकर, रचनाकार रेणु, पृ. 54–55

अपने पाँवों पर लड़खड़ाते हुए खड़ा होने की कोशिश कर रहा है, वह है मध्यवर्ग। आज का समाज इन तीन वर्गों में विभाजित हो गया है। पहला वर्ग अमीर या उच्च वर्ग जिसे प्राचीनकाल में शोषक कहा जाता था और दूसरा निम्न या शोषित वर्ग।

''समाज पर अगर निगाह डालेंगे तो यह तथ्य शत–प्रतिशत सच्चा दिखाई देता है, आज का समाज न पुरुष प्रधान है, न स्त्री–प्रधान, वह तो अर्थ प्रधान है।''[248]

आधुनिककाल में अर्थ का संबंध भौतिक सुखों की पूर्ति कराने से जोड़ने का कारण अर्थ प्राप्ति के लिए लोगों में होड़ मच गई है। ''वर्तमान युग में अर्थ को जीवन का महत्वपूर्ण विधायक तत्व स्वीकार किया गया है। इस कारण अर्थ ही समाज की शिराओं से बहने वाला वह रक्त हो गया है जो संपूर्ण समाज के जीवन को संचालित करता है।''[249]

आर्थिक असमानताओं के कारण समाज में कई समस्याएँ उत्पन्न होती हैं, इस संबंध में डॉ. किरण बाला जी का कथन है, ''सर्वोदय समाजवाद–आर्थिक समानता के लिए प्रतिबद्ध है। भारतीय समाज आर्थिक असमानता का शिकार है।

धनी और गरीब के बीच अर्थ की गहरी और चौड़ी खाई है। इस खाई को पाटकर ही आदर्श समाज की स्थापना की जा सकती है। इस खाई को पाटने के लिए यह भी जरूरी है कि उत्पादन के तमाम साधनों पर वायु और जल की तरह सबको अधिकार है। नंगे, भूखे, आर्थिक दृष्टि से टूटे लोग ऊपर उठे और अमीर लोग अमीरी से नीचे उतरे। यह काम अमीरों को स्वेच्छा से करने के लिए तैयार हो जाना चाहिए, ताकि आर्थिक समानता लाई जा सके और हिंसा, अपराध, भूख, गरीबी से मुक्ति पाई जा सके। इस आर्थिक समानता के सिद्धांत को व्यावहारिक रूप में परिवर्तित करने के लिए सर्वोदय समाजवाद कई सिद्धांतों को अपनाता है।''[250]

अधिकाधिक धन संचय की लिप्सा में व्यक्ति अन्य व्यक्तियों का आर्थिक शोषण करने लगता है। इस आर्थिक शोषण के परिणामस्वरूप धनिक और धनवान

---

248 डॉ. बापूराव देसाई, आधुनिक हिंदी निबंध, पृ. 114

249 डॉ. हेमेन्द्रकुमारी पानेरी, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास : मूल्य संक्रमण, पृ. 204

250 समकालीन लेखिका नासिरा शर्मा का कथा साहित्य, डॉ. ज्योति गजभिए, पृ. 118

हो रहे हैं, गरीब अत्यधिक गरीबी की खाई में गिर रहे हैं। दस्तकारों का आर्थिक शोषण नासिरा जी ने दृष्टिगोचर किया है। बड़े व्यापारी या व्यवसायी दस्ताकारों से काम करवा लेते हैं, किंतु उन्हें इसके बदले उचित पारिश्रमिक नहीं देते, उनका आर्थिक शोषण करते हैं। 'आाय बसंत सखी' कहानी में नासिरा जी ने लखनऊ के दस्तकारों का होने वाला आर्थिक शोषण प्रस्तुत किया है। सुल्ताना दिन भर दस्तकारी का काम करती है। किंतु पारिश्रमिक अत्यल्प प्राप्त होता है। "रूमाल की बनवाई.... दिन–भर में बीस या तीस पैसा.... इसमें तो दो वक्त की रोटी का आटा भी नहीं आता है। तू उस काम पर हवाई किले खड़े कर रही है? मौलवीगंज से चौक और चौक से डालीगंज चलते–चलते पैर टूटने लगे मगर मजदूरी के रुपये नहीं देने थे, सो नहीं दिए। उन्हें गरीबों के घर का हाल क्या पता कि हम न सावन हरे न भादव! खुदा से यही दुआ है कि या गरीबी से निजात दे या फिर मुझे ऊपर बुला ले।"[251]

'कातिब' कहानी में अकरम कातिब के माध्यम से कातिबों के आर्थिक शोषण का चित्रण हुआ है। अकरम कातिब लेखकों की सामग्री को कागज पर उतारता है, किंतु जब अपनी मजदूरी माँगता है, उसे परेशान किया जाता है। उसकी पत्नी नौशावा भी इस आर्थिक शोषण से चिढ़कर कहती है–"इस कितावत में मुआ क्या रखा है? दिन–रात आँखें फोड़ो तब जाकर चार पैसे हाथ लगते हैं।"[252] अकरम भी विचार करता है कि "इससे अच्छे तो बेहुनर है, जो अपनी मेहनत से भर पेट खाते हैं। सड़क के किनारे गिट्टी तोड़ने वाले को भी मेरी तरह मेहनताने के लिए मालिक के आगे हाथ नहीं फैलाना पड़ता है।"[253] कई आर्थिक समस्याएँ नासिरा शर्मा के कथा–साहित्य में मिलती हैं।

पूँजीवादी व्यवस्था से उत्पन्न समस्याएँ

नासिरा शर्मा जैसे साहित्यकार पूँजीवादी व्यवस्था को पूर्णतः समाप्त कर देना चाहती हैं ताकि समाज में समानता का वातावरण स्थापित हो सके। पूँजीवादी

---

[251] नासिरा शर्मा संगसार, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–1993 (क.स. 2), पृ. 369

[252] पत्थर गली, नासिरा शर्मा, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, संस्करण–1986 पृ. 63

[253] पत्थर गली, नासिरा शर्मा, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, संस्करण–1986 पृ. 77

व्यवस्था पर टिप्पणी करते हुए अशोक तिवारी जी लिखते हैं– ''पूँजीवाद और साम्यवाद के विचारों में टकराव सदियों पुराना है समाजवादी व्यवस्था किसी भी समाज की सबसे बेहतर स्थिति होती है। सोबियत रूस और अमेरिका के बीच का शीत युद्ध अभी इतना पुराना भी नहीं है कि हमें याद न हो। साम्यवाद में जहाँ समाज का वर्चस्व होता है, वहीं पूँजीवाद में व्यक्तिवाद हावी होता है और व्यक्तिवाद का पूँजी के फलने–फूलने से गहरा रिश्ता है। एक वर्ग पूँजी से लबरेज होता है, पूँजी को बढ़ाता ही बढ़ाता जाता है तो वहीं एक दूसरा वर्ग भी पैदा होता है जिसके पास से पूँजी छिनती चली जाती है और जो गरीब, निर्धन एवं हताश होता चला जाता है। पूँजीवादी व्यवस्था धार्मिक आस्थाओं, रूढ़ियों, किस्मत के लेखों आदि की जकड़बंदी को बढ़ावा देती है।''[254]

डॉ. केशवदेव शर्मा लिखते हैं–''समाजवादी व्यवस्था में सभी को समान रूप से कार्य करने के अवसर श्रम के बदले उचित पारिश्रमिक दिया जाता है। पूँजीवादी आर्थिक व्यवस्था द्वारा पैदा की गई अमीरी और गरीबी की खाई को इस व्यवस्था के अंतर्गत पाटने का प्रयास किया जाता है। समाज की यह आर्थिक व्यवस्था समग्र समाज की जीवन पद्धति है, किसी व्यक्ति विशेष की नहीं। युग विशेष का सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं आर्थिक जीवन परस्पर घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध होता है। समाज के इस विचित्र पार्श्वों की अभिव्यक्ति के माध्यम से ही कोई साहित्यकार अपने युग का यथार्थ चित्रण कर सकता है। अर्थव्यवस्था का वर्ग संघर्ष सबसे प्रबल है। उच्च वर्ग को छोड़कर मध्यम एवं निम्न वर्ग की स्थिति प्रायः जटिल ही रहती है। जिसका निरूपण कहानियों में जगह–जगह पर किया गया है।''[255]

बेरोजगारी की समस्या

''बेरोजगारी की समस्या भारतवर्ष में इतनी जटिल है कि उसकी किसी भी अन्य समस्या से तुलना नहीं की जा सकती।''[256]

'जैतून के साये' कहानी के तौफीक को अपने देश 'फिलिस्तीन' में कोई काम नहीं मिलता। बेकारी के आगे विवश होकर वह ''रोटी कमाने के लिए इस्राईल जाने

---

[254] नासिरा शर्मा एक मूल्यांकन, सं. एम. फीरोज अहमद, पृ. 70

[255] समकालीन लेखिका नासिरा शर्मा का कथा साहित्य, डॉ. ज्योति गजभिए, पृ. 120

[256] समकालीन हिंदी कविता के विविध आयाम, अंजनीकुमार दुबे भावुक, पृ. 164–165

लगा था और एक दिन थकान से चूर जब वह सरहदपार न कर सका और वहीं रास्ते में पड़ गया तो इस जुर्म में सीमा सुरक्षा पुलिस के जूतों और लातों की ठोकरों से उसे फुटबॉल में बदल दिया गया था।.... भुखमरी, गरीबी, बेकारी, महँगाई. ... कैसे बुरे दिन थे।''[257]

'मोमजामा' कहानी के वदी और जबीबा लेबनान.... सीरियावासी है। वे अलीगढ़ में इंजीनियर और डॉक्टर की पढ़ाई करने आते हैं, प्रेम विवाह के बंधन में बंध जाते उनके देश में आंतरिक युद्ध प्रारंभ होने के कारण ''जबीबा के साथ वदी भी शरणार्थी भत्ते के लिए संयुक्त राष्ट्रसंघ के दफ्तर के सामने खड़ा था। जब वे दोनों दिल्ली लौटते हैं, उन्हें कोई नौकरी नहीं मिलती। घर से थोड़ा–बहुत पैसा आता, किंतु इतने कम पैसों में किराए का कमरा तो दूर, महीने भर पेटभर खाना मुमकिन नहीं था। वदी ने नौकरी तलाश करनी शुरू कर दी थी। घर से किसी तरह रुपया पाँच–छः महीने बाद पहुँचता तो वह कर्जदारों को देने से खत्म हो जाता है।''[258]

गरीबी और महँगाई की समस्या

जनसंख्या वृद्धि के कारण गरीबी की समस्या उग्र रूप धारण कर रही है। देश विकसित न होने के कारणों में से गरीबी एक प्रधान कारण है। भारत के ग्रामीण इलाकों में गरीबी का प्रभाव ज्यादा दिखाई देता है। महँगाई की समस्या ने गरीबों को और गरीब श्रेणी में डाल दिया है। गरीबी हटाने के प्रति शासन भी उदासीन है। भारत के पिछड़े इलाके में तो गरीबी का इतना भयावह चित्र दिखाई देता है कि कई लोग दिन में एक बार मुश्किल से खाना खा सकते हैं। गरीबी निर्मूलन के लिए कोई ठोस उपाय न शासन की ओर से हुए हैं और न समाज की ओर से। गरीबी के कारण सबसे ज्यादा देश में कृषक वर्ग पिसा जा रहा है। इसी कारण किसानों में आत्महत्या, भुखमरी का सत्र आरम्भ हो रहा है।

'दहलीज' कहानी के सामिन आर्थिक अभाव के चलते अपनी पुत्री की शिक्षा अधूरी रखता है। ''बाप की मौत के बाद घर का सारा बोझ सामिन के कंधों पर

---

[257] इब्ने मरियम, नासिरा शर्मा, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2011 पृ. 44

[258] इब्ने मरियम, नासिरा शर्मा, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2011 पृ. 72

आन गिरा था। पिता की पेंशन के रुपये जो मिलते थे, वह बंद हो गये। सामिन ने घर के खर्च में बचत के चलते बड़ी लड़की सकीना की पढ़ाई छुड़वा दी और उसे घर पर बैठने पर मजबूर होना पड़ा।''[259]

'भूख' कहानी का रिजबान गरीबी में जीवन जी रहा है। उसे एक स्थान पर नौकरी मिल जाती है, किंतु जो काम उसे दिया जाता है वह पूरा नहीं हो पाता। उसे अपनी गरीबी का स्मरण हो आता है। ''माँ, बीमार थी। बाबा को मरे दो वर्ष होने को आए थे। दो छोटे भाईयों की पढ़ाई बंद हो गई थी। अब फाका करने की बारी थी।''[260]

'चाँद तारों की शतरंज' कहानी में पतंग बनाने वालों को आर्थिक विपन्नता का चित्रण हुआ है। ''सारे दिन की कड़ी मेहनत के बाद खाने को मिलती है रोटी और लहसुन की चटनी या फिर दूसरे–तीसरे दिन कोई सब्जी या दाल।''[261]

'विरासत' कहानी में तकियादारों की गरीबी का मार्मिक वर्णन है। पुल्लन मियाँ लावारिस का कब्रिस्तान बनाते हैं, किंतु तकियादार के खर्चे–पानी का नहीं सोचते। तकियादार को ''अब न कब्र की खुदाई मिलती है, न मुर्दे के घर से खाना आता है। वही बस मोहर्रम का ताजिया सजाए, उठाए, दफनाएँ में जो चढ़ावा–हिस्सा मिल जाए.... उससे रोज का भूखा पेट कहाँ भरता है.... जो खेत–क्यारी कभी मिला रहा ओहि से उपजे अनाज से एक समय पेट भर जाता है।''[262]

नासिरा शर्मा ने अपनी कहानियों में आर्थिक स्तर की विभिन्न प्रकार की संचेतनाओं को अपनी कहानी के माध्यम से व्यक्त किया है, जिसमें पूँजीवादी संस्कृति, व्यापार का बदलता स्वरूप, भूमण्डलीकरण अर्थव्यवस्था को केन्द्रित कर कथा साहित्य के विभिन्न विधाओं से उसे व्यक्त किया है, जिसमें संवेदनाएँ, सामाजिकता, युगबोधिता को एकीकृत करने का प्रयास किया है। नासिरा शर्मा ने

---

[259] खुदा की वापसी, नासिरा शर्मा, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली–110003, संस्करण–2013 पृ. 63

[260] संगसार, नासिरा शर्मा, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–1993 पृ. 94

[261] सबीना के चालीस चोर, नासिरा शर्मा, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2011 पृ. 30

[262] सबीना के चालीस चोर, नासिरा शर्मा, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2011 पृ. 18

अपनी लेखनी द्वारा युगीन प्रभाव को विभिन्न अर्थमयी एवं भूमण्डलीय विचारधारा से सारगर्भित किया है।

7. राजनीति एवं राजनैतिकता

भारतीय राजनीति में पुरूषों को भी अंग्रेजी शासन के दौरान काफी बाद में संवैधानिक अधिकार प्राप्त हुआ। महिलायें आज भी इस क्षेत्र में अधिकारों से वंचित और अधिकार प्राप्ति के लिये प्रयत्नरत है। परन्तू स्त्री पूर्णत अपने अधिकारों से वंचित है। आज स्त्रियां भी रसोई से संसद तक की यात्रा कर रही है। स्त्रियां विकसित हो रही है और वे घर–परिवार के दायरे से निकलकर संसद भवन की सीढ़ियां चढ़ रही है। आज स्त्री की शिक्षा से लेकर सत्ता तक देखी जा सकती है। संविधान ने पुरुषों के साथ–साथ स्त्रियों को भी कई अधिकार दिये हैं। विवाह, तलाक, शिक्षा, राजनीति विकास से जुड़ी योजनाओं आदि सभी में स्त्रियों को समान अधिकार प्राप्त है।

राजनीति विद्रूपताएँ

"राजनीति से तात्पर्य उस शास्त्र से है जो राज्य संचालन संबंधी नीतियों का अध्ययन प्रस्तुत करता है। यह विशेषतः संविधान से सम्बद्ध होता है, जिसे किसी भी देश का संचालनकर्ता उसे जीवन में व्यवहार रूप में परिणत करने का भरसक प्रयास करता है।"[263]

राजनीति का स्वरूप अत्यन्त व्यापक है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से राजनीति संबंधित दिखाई देती है। हम जिस युग में रह रहे हैं वह राजनीति का युग है। हमारे दैनिक जीवन में राजनीति की व्याप्ति का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि विज्ञान, साहित्य, धर्म, उद्योग, नीति, कूटनीति आदि क्षेत्रों तथा व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र तथा विश्वजनीन संबंधों में राजनीति की पैठ हो गई है। साहित्य भी राजनीति से अछूता नहीं रहा है। इस संदर्भ में डॉ. हरदयाल जी का कथन द्रष्टव्य है–"कोई भी साहित्य अपनी समकालीन राजनीति से असम्पृक्त और अप्रभावित नहीं रह सकता।.... राजनीति अपने समय के साहित्य को प्रत्यक्ष रूप से

---

[263] साठोत्तरी हिंदी कहानी और राजनीतिक चेतना, डॉ. जितेन्द्र वत्स, पृ. 17

प्रभावित करने का बराबर प्रयत्न करती है।''[264]

डॉ. ज्योति गजभिए लिखती हैं–''राजनीति और साहित्य दो अलग धाराएँ हैं। किंतु प्राचीनकाल से ही देश, काल और उनसे जुड़ी परिस्थितियों का साहित्य पर प्रभाव पड़ता है। आदिकाल और मध्यकाल में तो राजाओं ने साहित्यकारों और कवियों को राज्याश्रय भी दिया था। देश में जो भी सत्ता हो उसका चाहे आंशिक रूप में क्यों न हो साहित्य पर प्रभाव पड़ता है। लोकतंत्र के तहत साहित्यकार भी पहले से अधिक मुखर हो गया है। समकालीन साहित्य समसामयिक समस्याओं का वर्णन करता है। निश्चित ही समस्याओं के स्वरूप में भी परिवर्तन हुआ है। बढ़ती हुई महँगाई और बेरोजगारी आज की ज्वलंत समस्याएँ हैं। भ्रष्टाचार का दानव गरीबों पर जुल्म ढा रहा है। समाज की व्यवस्था इस प्रकार की है कि अमीर और अमीर होते जा रहा है और गरीब और गरीब होते जा रहा है। इन्हीं सब कारणों से देश का ढाँचा चरमरा गया है। रिश्वतखोरों ने आम इंसान का जीना मुहाल कर दिया है।

नासिरा जी की कहानियों में वर्तमान समस्याओं और राजनीतिक गतिविधियों का वर्णन हुआ है।''[265]

राजनीति के क्षेत्र में कई विद्रूपताएँ व्याप्त हो गई हैं। शोषण, अत्याचार, सत्ता प्राप्ति की लालसा में अवैध कार्य आदि। राजनीतिक विद्रूपता के परिणाम से उत्पन्न अवसरवादी प्रवृत्ति, भाई–भतीजावाद, अल्पसंख्यक वर्ग में असुरक्षा का भाव, शरणार्थियों की दुर्दशा, अपनी स्वार्थ सिद्धि हेतु फैलाए जाने वाला आतंकवाद, राजनीति द्वारा मिले अधिकारों का दुरुपयोग करना, सत्ता में बने रहने के लिए या सत्ता प्राप्ति के लिए शक्ति प्रदर्शन करना। नारे, जुलूस, प्रदर्शन, आंदोलन करना तथा राजनीतिक कैदियों से दुर्व्यवहार करना आदि बातें राजनीतिक विद्रूपता के अंतर्गत आती है।

'दीवार–दर–दीवार' कहानी में राजनीतिक विद्रूपता मोहंदिस आगा का परिवार तबाह करने में सफल हो जाती है। राजनीति जब घर–परिवार में प्रवेश

---

[264] साहित्य और सामाजिक मूल्य, डॉ. हरदयाल, पृ. 37

[265] समाकलीन लेखिका, नासिरा शर्मा का कथा साहित्य, पृ. 96

करती है तो सियासत की जंग माँ–बाप को हरा देती है।

"सियासत लोगों की साँस में रच–बस गई थी। मोहंदिस आगा धार्मिक यानी हिज्बउल्लाही थे, सत्तारूढ़ पार्टी के कट्टर अनुयायी थे। बेटा साम्यवादी और बेटी शैदा मुजाहिद यानी इस्लामी गुरिल्ला, जो सत्ता पार्टी की कड़ी आलोचक थी।....

आजादी करीब है माँ! परेशान मत हो, तुम्हें आज बताती हूँ, हादी जेल में है। मैं भी जा रही हूँ। आजादी का सूरज निकला, तो हम साथ–साथ दिखेंगे वरना हमारे लहू की लालिमा को तुम देखकर गोरवान्वित होना।"[266]

नासिरा जी की कहानी 'मोमजामा' में बताया है। सीरिया और लेबनान में विकट राजनीतिक परिस्थिति हो जाने के कारण एक अच्छा–खासा परिवार तबाह हो जाता है। बदी और जबीबा जो राजनीति की मार के थपेड़ों से यहाँ–वहाँ भटकते रहते हैं। उनकी बेटी भी बम विस्फोट में मारी जाती है। सियासत की अंधी मार ने उन्हें लहूलुहान कर रखा था। बच्चों का शिक्षण, उनकी योग्यता सभी कुछ राजनीतिक षड़यंत्र के चलते प्रभावित होती है और भविष्य संदिग्ध हो जाते हैं।

'तारीखी सनद' का सरबान ऐसा सिपाही था, जो अपने अंदाज से लहू बहाकर शहीदों में शरीक हुआ था। लेकिन ऐसा करने से उसकी मौत सिर्फ एक गुमनाम खुदकशी का मुख्तसरबयान बनकर रह गई।

'गुंचा दहन' कहानी सन् 1979 में ईरान में हुई राजनीतिक क्रांति में तबाह हुए एक परिवार की दास्तान बयान करती है। राजनीति के नंगे नाच का हिस्सा अमनद आगा की बेटी मेहरमान हो जाती है। जिसकी उम्र सिर्फ 12 साल है।

"सियासत का भूखा अजदहा जवान खून का प्यासा है। कहाँ तक, कब तक मेहरमान को बचाकर रखोगी? वह अजदहा जवान तन की बू सूँघता हमारे घर में दाखिल हो जायेगा।"[267] स्कूल के एक जुलूस में मेहरमान को पासदार बंदी बना कर ले जाते हैं। जेल में उसके साथ बलात्कार किया जाता है जिसके कारण उसकी मृत्यु हो जाती हैं मेहरमान के माता–पिता को जब इस बात का पता चलता है तो उसकी माँ विरोध करती है जिसके कारण उन्हें भी पकड़ लिया जाता है।

---

[266] संगसार (क.सं. 2), नासिरा शर्मा, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–1993 पृ. 42–46

[267] संगसार (क.सं. 2), नासिरा शर्मा, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–1993 पृ. 51

अतः राजनीति के चलते एक परिवार और तबाह हो जाता है।

'पहली रात' एक हौलजनक खौफनाक मंजर की दरिंदगी की कहानी है। ईरान में क्रांति और सवाक पुलिस का जालशाह के सिपाही और कब्रिस्तानों में जवान लड़के–लड़कियों की मौत का बैन, गुस्सालो का लाशें ढोने के काम और इन सब रक्तपात और मौत के तांडव के बीच एक गजब किस्म की इंसानी हैवानियत का खेल।

'दीमक' कहानी में नायिका के पाँचों पुत्र सत्ता के विरोधक हैं और वे शाही हुकुमत के जानी दुश्मन बने हुए है। उसके पाँचों पुत्र की एक–'एक करके हत्या कर दी जाती है। देश की इस शोषण–दमन की 'दीमक' का इलाज क्रांति है। ''वह समाज और संस्कृति को खा रही है।''[268] 'तीसरा मोर्चा' कहानी धर्म और मजहब के नाम पर हुए दंगे–फसाद कश्मीर घाटी के तनावपूर्ण वातावरण को बयान करती है। डॉ. ज्योति सिंह लिखती है–''मजहब की आड़ में औरत का शिकार करने वाले नरपशुओं को लेखिका उघाड़कर रख देती है।''[269]

बढ़ते भ्रष्टाचार की समस्या

भ्रष्टाचार ऐसी समस्या है जो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में परिव्याप्त हो गई है। जिसके कारण हमारे देश की प्रगति अवरुद्ध हो गई है और भ्रष्टाचार का दानव इंसान की सुख और शांति को निगल चुका है। सी.पी. श्रीवास्तव जी के अनुसार ''भ्रष्टाचार का प्रवाह उद्दाम वेग के साथ वह रहा है और इसने लोगों को स्वच्छ प्रशासन से वंचित तथा विकास के मार्ग को अवरुद्ध कर दिया है।.... भ्रष्टाचार ने वास्तव में एक महामारी का रूप ले लिया है और अधिकांश नौकरशाही, पुलिस, न्यायपालिका और राजनीतिक सत्ता सब इसकी लपेट में है।''[270]

'गूँगा गवाही' कहानी में पुलिस द्वारा किए जा रहे भ्रष्टाचार का पर्दाफाश हुआ है। हबीम हज्जाम के लड़के चाँद के साथ होली के दिन सुखिया नवाब और गोपी कुकर्म करते हैं, जिसमें उसकी मृत्यु हो जाती है। मगर दरोगा गुनाहगार को सजा दिलवाने के बजाय उल्टा हबीम हज्जाम के भाई से कहता है–''हम मदद

---

[268] इंतजार हुसैन, कछुए, पृ. 72

[269] नासिरा शर्मा : एक मूल्यांकन, सं. फीरोज अहमद, पृ. 212

[270] भ्रष्टाचार भारत का भीतरी शत्रु, सी.पी. श्रीवास्तव, पृ. 1

करना भी चाहें तो नहीं कर सकते हैं। बेबात दुश्मनी हो गई तो फिर रोज दंगा–फसाद होगा। तेरा जीना मुश्किल हो जाएगा। उसे कौन बाद में संभालेगा। हमारी मजबूरी समझ, कच्ची हँडिया में खाना नहीं पकता।''[271]

'बुतखाना' कहानी संग्रह की कहानियों के संबंध में आज की समाज व्यवस्था और भ्रष्टाचार को इंगित करते हुए प्रताप दीक्षित कहते हैं–''व्यवस्था की दुष्प्रवृत्तियों, साजिशों, भ्रष्टाचार, नौकरशाही, शिक्षाजगत् में पक्षपात और क्रूर महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए किसी भी स्तर तक गिरना आज के समाज में व्याप्त है। आम आदमी तो दूर तथाकथित बुद्धिजीवी भी इससे समझौता किए हैं।''[272]

इन प्रवृत्तियों का चित्रण करती लेखिका की 'ठण्डा बस्ता' और 'खिड़की' कहानियाँ हैं। 'ठण्डा बस्ता' में ईमानदार, साहसी, थाना एस.एच.ओ. संतोष कुमार के तबादले और सहाय द्वारा चार्ज लेते ही जरीना हत्याकाण्ड की फाइल बंद होना इस बात का द्योतक है कि भ्रष्ट व्यवस्था में संतोष कुमार जैसे ईमानदार लोगों की जगह नहीं है। शिक्षा जगत में पक्षपात, भ्रष्टाचार और पाखण्ड की गाथा है–'खिड़की'।

'इब्ने मरियम' कहानी में भोपाल गैस काण्ड में पीड़ित व्यक्ति की दशा दिखाई गई है। कहानी की पात्र सुगरा कहती है–''इस गैस के चलते हम मुसीबत ज्यादा और गरीब लोगों के नाम पर बड़े लोग लाखों कमा रहे हैं। मगर हमारे हाथों में धेला भी न पहुँचा, न किसी तरह की मदद न इमदाद.... कम से कम डॉक्टर और अस्पताल की सहूलियत ही मिलती तो आज अब्बा यूँ दर–दर न भटकते होते।''[273]

देश विभाजन की त्रासदी

15 अगस्त 1947 को देश आजाद हुआ। आजादी के साथ जुड़ी दूसरी घटना थी देश का विभाजन। एक ही देश का हिंदुस्तान और पाकिस्तान इन दो मुल्कों में विभाजन हो गया इतना ही नहीं, पाकिस्तान का एक हिस्सा आगे चलकर बांग्लादेश बन गया। एक ही देश तीन हिस्सो में तकसीम हो गया। इस विभाजन के साथ

[271] कहानी सं. 2 सबीना के चालीस चोर, संस्करण–2011 पृ. 274

[272] नासिरा शर्मा एक मूल्यांकन, सं. एम. फीरोज अहमद, पृ. 272

[273] इब्ने मरियम, कहानी संग्रह–1, संस्करण–2011 पृ. 456

जुड़ी एक और घटना थी लाखों लोगों की अदला–बदली।

भारत को वर्मा से अलग करने में दो वर्ष लगे थे। सिंध को मुंबई से और उड़ीसा को बिहार से अलग करने में भी दो वर्ष लगे, लेकिन पाकिस्तान बनाने में सिर्फ दो महीने 12 दिन का समय दिया गया। 3 जून 1947 को माउंटबेटन योजना स्वीकार की गई और 15 अगस्त 1947 को दोनों देशों की स्थापना कर दी गई। देश विभाजन के कारण दोनों देशों के सामने अनेक समस्याएँ पैदा हो गई। जनता की अदला–बदली के कारण दोनों देशों को गंभीर आर्थिक संकट का सामना करना पड़ा। व्यापक स्तर पर दंगे हुए, लूटमार, आगजनी की घटनाएँ हुईं। भारत और पाकिस्तान के बीच जाने वाली स्पेशल ट्रेनों को लाशों के ढेर में परिवर्तित कर दिया गया।

नगमा जावेद लिखती हैं–''बँटवारा उनके गलों में पड़ा फाँसी का फंदा बन चुका था। जो न पूरी तरह कसता था, न ढीला होकर छूटता था। मैं कहती हूँ कि बँटवारा एक अभिशाप है, एक कोढ़ है, एक जहर है। एक आग है जिसमें आज भी दिल जल रहे हैं। यह बँटवारा ही है, जिसमें दो कौमों के बीच शंका, संदेह, अविश्वास के कांटे बिखेर दिए हैं। 1965 और 1971 में भारत–पाक युद्ध क्या हुए। सियासत के अंधेर ने मानवीयता को भी अपनी लपेट में ले लिया है, उसे भी कत्ल करने की साजिशें रची जाती हैं। आज भी चैन, अमन कहाँ हैं? डर, खौफ और आंतक के साये में जीना आज के मनुष्य की तकदीन बन चुकी है। बम ब्लास्ट आम बात हो गई है। किसी पल, किसी जगह जिंदगी सुरक्षित नहीं है। आज इस वक्त भी, जिस वक्त मैं यह लेख लिख रही हूँ। बंबई आतंकवादियों की चपेट में है।

''ताजमहल' होटल, ओबेरॉय होटल, में तो पिछले 39 घंटों से कयामत मचा रखी है इंसानियत के दुश्मनों ने। बेगुनाह लोगों को क्यों निशाना बनाया जाता है। कौन–सी आसमानी किताब में लिखा है कि फसाद करो, दंगे करो, बेकसूरों को भून डालो? कौन–सी राजनीति है यह? किसका खौफनाक चेहरा छिपा है नकाब में? क्या दुनिया की सबसे बड़ी ताकत के हाथों का खिलौना बने हुए हैं कुछ लोग? ढेर सारे सवाल हैं। जब–जब फसादात होते हैं, तनाव के कांटे उगते हैं, आतंक के अलाव में निरीह लोग सिकते हैं, भुनते हैं तो मानवता खून के आँसू बहाती है। कब

तक यह सिलसिला जारी रहेगा?''[274]

'देश विभाजन की त्रासदी' से त्रस्त 'सरहद के इस पार' कहानी जिसमें आए दिन हिंदू मुस्लिम फसाद होते रहते हैं। विभाजन ने हिंदू–मुसलमानों को क्या दिया?

एक जख्म, एक घाव, एक चीख। विभाजन ने घर, आंगन बाँट दिया। जो खुली तलवार की तरह दोनों के सिरों पर लटका हुआ है। लहूलुहान होते रहते हैं आम मासूम शहरी, जिनका राजनीति से कोई लेना देना नहीं है। प्रेम में विफल रेहान इन फसादों में दीवाना हो जाता है। ''मारो सारे हिंदुओं को, गले दबा दो इनके। साले कहते हैं कि तुम पाकिस्तानी हो, जाकर पूछो इनसे, तुम्हारे बाप–दादा कहाँ हैं। मेरे बाप दादा इसी धरती के आगोश में गड़े हैं। सबूत चाहिए तो जाकर देखो हमारे कब्रिस्तान, सबके सब मौजूद हैं। वहाँ खुद गद्दार है और हम पर इल्जाम लगाते हैं।.... नौकरी न देने का अच्छा बहाना ढूँढा है? आखिर कहें भी क्या? मारो सब कातिलों को। मारो, खून की नदियाँ बहा दो मार–मार कर!'' [275]

नगमा जावेद लिखती हैं–''पाकिस्तान तो इसलिए बना था कि यह समझा जा रहा था कि दोनों का साथ रहना नामुमकिन है, लेकिन भारत के हिंदू–मुस्लिमों ने सिद्ध कर दिया कि तारीख का वह फैसला कितना गलत था। क्या ही अच्छा हो कि भारत माँ की दो आँखें तारीख के एक गलत फैसले की बदबख्ती का अंदाजा लगाकर पूरी जुराअत के साथ उसे रद्द करने का हौसला जुटाकर फिर से मिल जाए, एक हो जाए और जिंदा मुहब्बत की जिंदा मिसाल बन जाएँ, मेरा पैगाम मुहब्बत है, जहाँ तक पहुँचे ।''[276]

भारत में ब्रिटिश राज्य आगमन के साथ ही हिंदू–मुस्लिम दंगे आरंभ हुए। भारत–पाकिस्तान विभाजन के समय दंगों की बारंबारता और भी बढ़ गई। इसके पश्चात् मुसलमानों के एक वर्ग ने जिन्ना को नकारकर महात्मा गांधी, मौलाना आजाद, रफी अहमद किदवई, जाकिर हुसैन को अपना नेता स्वीकार किया और पाकिस्तान का चित्रण करते हुए नासिरा शर्मा का मत है, ''हिंदुस्तान के बँटवारे ने

---

[274] नगमा जावेद : एक मूल्यांकन, सं.एम. फीरोज अहमद, पृ. 138

[275] नासिरा शर्मा, पत्थर गली (क.सं. 1), राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, संस्करण–1986 पृ. 197

[276] नगमा जावेद, नासिरा शर्मा के कथा साहित्य : वर्तमान समय के सरोकार, प्रकाशक अतुल प्रकाशन, कानपुर, संस्करण 2012, पृ.93

भारतीय मुसलमानों की रीढ़ की हड्डी तोड़ दी। एक तरफ घर–आंगन बँट गए। पाकिस्तान जाने वाले मुसलमानों को भारत में छोड़ी जायदाद के बदले में जायदाद मिली। जाने वालों में मध्य और ऊँचा वर्ग शामिल था, जो पढ़ा लिखा था। उसने अपनी तरह के लाभ उठाते हुए नौकरियाँ और बेहतर जिंदगी पाई। संघर्ष उन्हें भी करना पड़ा। मगर भारतीय मुसलमानों को बँटवारे की प्रताड़ना सहते हुए जमींदारी उन्मूलन के चलते जहाँ जमीन–जायदाद से हाथ धोना पड़ा। वहीं आए दिन फसाद के अभिशाप को सहना पड़ा। उनकी स्थिति गिर गई। आर्थिक, सामाजिक सियासी स्तर पर उनका विश्वास कुंठा में बदलने लगा। पढ़े–लिखे लोगों की कमी से मध्य वर्ग लगभग समाप्त हो गया, बच गए कारखानेदार, मजदूर, दस्तकार जो अस्सी फीसदी मुसलमान वर्ग का प्रतिनिधित्व करते, मौलवी के पीछे दौड़ते 'इस्लाम खतरे में है' के भय से ग्रस्त हो अपने ही देश में शरणार्थी जैसी कुंठा पाल बैठे।''[277]

'आमोख्ता' कहानी पंजाब के समय में बँटवारे की त्रासदी को दर्शाती है। यह रचना सिर्फ हिंदू–सिख आतंकवाद के शिकार एक पंजाबी या हिंदुस्तानी परिवार की नहीं है, बल्कि भारत–पाक विभाजन के फलस्वरूप छटपटाती आत्मा वाले एक इंसान की व्यथा भी है। इसे नायक की इस मानसिकता से नासिरा शर्मा ने व्यक्त किया है–''मन में आक्रोश का बबंडर उठ रहा है। दिल चाहता है चीख–चीखकर पूछूँ कि अरे हिंदू राष्ट्र का सपना देखने वाले सौदागरों, सत्ताधारियों, यह कैसी राजनीति है जिसमें हिंदू भी सुरक्षित नहीं बचा? दूसरों को मारने की धुन में यह भूल जाते हो कि हिंदुस्तानियों को आपस में लड़ाकर तुम किसी का नहीं, अपना ही नुकसान कर रहे हो। क्यों हमें मध्ययुगीन अँधेरे में ढकेल रहे हो? मैं मुसलमान नहीं हूँ, मैं ईसाई, जैन, बौद्ध नहीं हूँ, मैं एक हिंदू हूँ। मैं एक हिंदू होकर तुमसे पूछता हूँ कि हिंदू होकर क्यों दो बार अपने ही मुल्क में उजड़ा?''[278]

अंतर्राष्ट्रीय घटनाक्रम

अंतर्राष्ट्रीयता का अर्थ स्पष्ट करते हुए डॉ. मनीषा शर्मा लिखती हैं–''अंतर्राष्ट्रीयता का अर्थ है दो देशों के पारस्परिक संबंध जबकि वैश्वीकरण का

---

[277] नासिरा शर्मा : एक मूल्यांकन, सं. फीरोज अहमद, पृ. 312

[278] इब्ने मरियम, कहानी संग्रह–1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2011 पृ. 323

निहितार्थ विश्व के सभी राष्ट्रों का परस्पर संबंधों के सूत्र में बँध जाता है, एक व्यवस्था में अनुस्यूत हो जाना। अट्ठारहवीं शताब्दी के बाद जब वैज्ञानिक विकास तीव्र गति से हुआ तो अंतर्राष्ट्रीय संबंध और भी अधिक घनिष्ठ हो गये। वैज्ञानिक सुविधाओं ने जो संचार–साधन उपलब्ध कराये। वे इस दिशा में क्रांतिकारी सिद्ध हुए। सभी राष्ट्र अपने–अपने स्वार्थों को केन्द्र में रखकर परराष्ट्रों के साथ संबंध स्थापित करते रहे। परंतु स्वार्थों की टकराहट ने राष्ट्रीयता के बोध को और सघन कर दिया। बीसवीं सदी राष्ट्रीयता के विकास की शताब्दी थी। 1914 का प्रथम विश्व युद्ध राष्ट्रीयता की भावना की अभिव्यक्ति थी। राजनैतिक स्तर पर अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का स्वरूप लेने के बीच भी सोच में यह राष्ट्रीयता की भावना ही थी।''[279]

नासिरा जी का साहित्य सिर्फ भारत तक ही सीमित नहीं बल्कि विश्व के विभिन्न देशों का इसमें वर्णन है। अतः आवश्यक है कि अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं का भी अध्ययन किया जाए विश्व के अनेक राष्ट्रों में सत्तारूढ़ होने के लिए एक स्पर्धा चल रही है, इनमें कुछ बड़े राष्ट्र विश्व पटल पर छा जाना चाहते हैं और इन राष्ट्रों का दबाव उनकी विभिन्न गतिविधियों से अवगत होता है। इराक, ईरान और अफगानिस्तान जैसे देशों के कई ज्वलंत मुद्दों को कथा का विषय बनाया है। इन घटनाओं में आंतरिक हलचल का स्पष्ट वर्णन है, देश में जब गृहयुद्ध हो तो बाह्य हस्तक्षेप उसे और भी पेचीदा बना देता है। इन देशों में भी परिस्थितियाँ कुछ ऐसी बदली कि लोग वतन छोड़कर बाहर जाने को मजबूर हो गए और शरणार्थी का जीवन जीने को बाध्य हो गये।

अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं के संबंध में डॉ. मनीषा शर्मा का कथन है–''मुस्लिम समाज पर ध्यान केन्द्रित करने के बावजूद भी उनके साहित्य की प्रवृत्ति अंतर्राष्ट्रीय है। उनका कथा साहित्य विश्व के अनेक देशों से पात्र चुनता है और किसी मुख्य समस्या पर ध्यान केन्द्रित करके अपना ताना–बाना बुनता है। सामान्यतः वे किसी ऐसी समस्या को उठाती है जिसका संबंध उस पात्र के स्थानीय परिवेश के साथ लगाव से होता है। घर, परिवार, गाँव, शहर आसपास के व्यक्ति इन सभी के साथ पात्र के जो संबंध होते हैं। उनकी गहरी राजात्मकता का उद्‌घाटन वे अपने

---

[279] समकालीन लेखिका नासिरा शर्मा का कथा–साहित्य, डॉ. ज्योति गजभिए, पृ. 124

कथा–साहित्य में करती है। लगभग संपूर्ण कथा–साहित्य में ये रागात्मक संबंध गहराई के साथ आहत होते हैं। यही वह बिंदू है जहाँ वे राष्ट्रीयता के आग्रह और राजनीति की क्रूरता का उद्‌घाटन करते हुए मानववाद की संवेदना उत्पन्न करती हैं। और असंतुलित परिस्थितियों के विरोध में खड़ी है। यद्यपि उन्होंने कहीं भी कथित रूप से राष्ट्रीयता और धर्म का विरोध नहीं किया, परन्तु उनके साहित्य की ध्वनि यह है कि राष्ट्रीयता मनुष्य को इस प्रकार विभाजित करती है कि उसकी कोमल भावनाओं का पोषण असंभव हो उठता है वे कहीं भी धर्म विरोधी नहीं है फिर भी धर्मोन्माद से उत्पन्न अत्याचारों के विरोध में खड़ी दिखाई देती है।''[280]

'मोमजामा' कहानी बदी और जबीबा नामक दम्पत्ति की है। जबीबा सीरिया की है और बदी लेबनान का दोनों भारत में अलीगढ़ यूनिवर्सिटी में पढ़ाई के दौरान मिलते हैं। नस्लवादी हिंसा की शिकार बन उनका वैवाहिक जीवन छिन्न–भिन्न हो जाता है। अंत में बदी गायब करवा दिया जाता है और जबीबा के पास सिर्फ असुरक्षित भविष्य रह जाता है। एक स्थान पर निराश होकर बदी जबीबा से कहता है–''मौत ने हमारे नाम नोट कर लिए हैं जबीबा। उसमें अब क्या घबराना? सरहद पार करने में ही हमारे लिये और खतरा है। सीरिया भी हम जाएँ तो वहाँ रहेंगे कहाँ? क्या करेंगे? जो पूछताछ यहाँ केवल मुझे लेकर चल रही है। वहाँ तो तुम्हारे पूरे परिवार को लेकर चलेगी। क्या पता हवाई अड्‌डे पर तुम्हारी तस्वीर भी मौजूद हो इसलिए अपने को संभालो, जो सर पर पड़ेगी उसको सहेंगे। अपनी किस्मत में लिखी भटकन को मिटा तो नहीं सकते हैं न? बदी ने समझाते हुए जबीबा से कहा।''[281]

नासिरा जी की व्यापक सोच ने प्रत्येक देश के व्यक्ति के जीवन में झाँक कर देखा है। 'जड़ें' कहानी दक्षिण अफ्रीका के युगांडा प्रदेश की है। जहाँ 'इण्डियन गो बैक' का नारा लगाया जारहा है। गुलशन युगांडा में पली बढ़ी है। उसी को अपना देश समझती है। किंतु नस्ल भेंद में उसका परिवार मारा जाता है और उसे लंदन आना पड़ता है। यह दुर्घटनाएँ उसका रिश्तों पर से विश्वास उठा देती है।

---

[280] समकालीन लेखिका नासिरा शर्मा का कथा–साहित्य, डॉ. ज्योति गजभिए, पृ. 102

[281] नासिरा शर्मा (क.सं. 1), इब्ने मरियम, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2011 पृ. 387

'कागजी बादाम' अफगानिस्तान की कहानी है, जहाँ के लोग सियासतदानों के चक्कर में अपना सब कुछ गंवा चुके हैं। न घर, न घरवाले, न खेत, न फल के दरख्त, कुछ भी नहीं बचा है। उनके पास ऊँची डिग्री और पैसों का जोर भले ही न हो, तथाकथित बुद्धिजीवियों से अधिक सुलझे हैं, सो रोटी और जमीन की हकीकत जानते हैं। पेट की भूख और बीबी की बीमारी की मजबूरी बेटी गुलबानों को किसी के घर की नौकरानी बनने पर विवश कर देती है।

'पुल–ए–सरात' उन विस्थापितों की भी कथा है जो नस्ल से ईरानी थे, किंतु इराक की मिट्टी में रच–बच गए। बरसों बाद सियासी मार ने उन्हें 'अजनबी' धरती पर जाने के लिए विवश कर दिया है। सब कुछ ठीक होते हुए भी बगदाद उन्हें भूले नहीं भूलता, दंजला का बहना, शाम का झुटपुटा और एक खास खुशबू जो सिर्फ बगदाद में थी और बगदाद की उस खुशबू को वे तेहरान में ढूंढते हैं, किंतु न पाने पर तड़पते भी है और इस सबके बावजूद गहरी पीड़ा ''यहाँ के लोग हमें मुसलमान नहीं समझते हैं.... वतन की दूरी क्या होती है, इसका अंदाजा तो सिर्फ वही कर सकता है, जिसका दाना–पानी उसकी जमीन से उठ गया हो। मुस्लिम भाईचारे की बातें तो सिर्फ बातें हैं।''[282]

नासिरा शर्मा ने अपने साहित्य में राजनीतिक सरोकारों में समस्याएँ, चुनाव, भ्रष्टाचार एवं विभाजन को दर्शाया है। आजादी के पश्चात् लोकतंत्र का स्वरूप बदला है, जिसमें दिशाहीनता का अधिक से अधिक बोलबाला हुआ है। लोकतंत्र में चुनाव को महत्वपूर्ण माना गया है। चुनाव के माध्यम से ही लोग अपनी पंसद के नेता का चुनाव कर लोकतंत्र को मजबूत बनाते हैं, लेकिन दूरदर्शी नेतृत्व और 'वोट' की राजनीति ने देश की दिशाहीनता की ओर धकेल दिया है। इसी कारण आज चुनाव की ओर लोग एक अलग दृष्टि से देखने लगे हैं। चुनाव में जीतना समाज सेवा का माध्यम न होकर भ्रष्टाचार, गुंडागर्दी करने का साधन माना जा रहा है। इसी कारण 'चुनाव' इस शब्द का पतन हो गया है। आज चुनाव के कारण 'पारस्परिक सौहार्द एवं एकता की अनुभूति, ईर्ष्या और दलबंदी में बदल गई है।

---

[282] नासिरा शर्मा (क.सं. 1), इब्ने मरियम, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2011 पृ. 418

8. साम्प्रदायिक भावना एवं एकता

साम्प्रदायिकता की समस्या बहुत गंभीर है, लेकिन कई बार समस्याओं की भी रूढ़ियाँ बन जाती हैं। यह साम्प्रदायिकता मनुष्य निर्मित है और इसका फल भी मनुष्य को ही भोगना पड़ता है। मनुष्य जाति के बारे में लिखते हुए नासिरा जी कहती हैं—मनुष्य को यदि गहराई में जानना है तो उनकी पृष्ठभूमि को जानना बहुत जरूरी होता है। जब पता चलता है कि कौन क्या था, कहाँ से आया था, कहाँ जाकर रूका। कबीले पहले वन—गूजरो की तरह ही टहलते थे। अब रोजी—रोटी कमाने के लिए देश—विदेश की दूरियाँ नापते हैं। वतन कहीं है, नमक कहीं और का खा रहे हैं। इन सारे विरोधाभासों को देखकर नतीजा यह निकलता है कि कोई कहीं का नहीं है और हर जगह का है। पूरी दुनिया कभी अपनी लगती है और अपनी जमीन पराई लगती है। मनुष्य भावना के इस ऊबड़—खाबड़ रास्ते से रोज गुजरता है, मगर हर ठोकर पर वह सँभलने की कसम खाता है। हर, चोट पर टीस के दर्द से तिलमिलाकर तौबा करता है। मगर हर अनुभव उसका आखिरी साबित नहीं हो पाता है, चाहे दूध का जला छाछ भी फूँक—फूँक कर पिए या हर उठाया कदम नाप तौलकर रखे, मगर लंबी जिंदगी में अनुभवों का होना बेहद लाजिमी है, क्योंकि जिंदगी निरंतर चलने का नाम है।

संप्रदाय सिर्फ जाति—पाति और धर्म के आधार पर नहीं तो आर्थिक स्तर के आधार पर भी बन जाते हैं। निम्नवर्गीय, मध्यवर्गीय और उच्चवर्गीय हर बलवान सम्प्रदाय कमजोर को कुचलने की कोशिश करता है। जिससे वे चाहते हुए भी पनप नहीं पाते। साम्प्रदायिक भेदभाव सिर्फ भारत में ही नहीं अन्य देशों में भी देखा जाता है। अमेरिका, ब्रिटेन में काले गोरों की लड़ाई है। वहीं ईरान, ईराक, अफगानिस्तान, कुर्दिस्तान आदि में शिया, सुन्नी और कुर्दी को लेकर भेदभाव है। साथ ही साथ एक परंपरावादी सत्ता के समर्थक और एक नई विचारधारा के समर्थक भी दिखाई देते हैं। यह आधुनिक और पुरातन विचारों की लड़ाई है और यही साम्प्रदायिकता जिधर भी पनपती है उस देश की जड़ें खोखली कर देती हैं।

"सांप्रदायिकता भारतीय राजनीति के दाँव—पेंचों की उपज है। राजनीतिज्ञ अपने लाभ के लिए साम्प्रदायिकता की भावना फैलाते हैं और जरूरत पड़ने पर दंगे भी कराते हैं। राजनीति का अपराधीकरण हो रहा है। समाज विरोधी तत्वों को

संरक्षण देकर उनकी आड़ में साम्प्रदायिकता का जुआ खेला जाता है।''[283]

'सबीना के चालीस चोर' कहानी के द्वारा नासिरा जी ने साम्प्रदायिक दृष्टिकोण का पर्दाफाश किया है। धर्म, संप्रदाय के नाम पर होने वाले दंगों से शाहरूख को अपना घर छोड़कर अपने ससुराल आकर रहना पड़ता है। कहानी में एक दृश्य देखिए–''फसाद जंगल की आग की तरह एक शहर से दूसरे शहर में फैल रहा था.... इन्हें तो हिंदू–मुसलमान कहना गुनाह है। ये जल्लाद है, जल्लाद, इसका काम बारूद बिखेरना और फलीता लगाना है, तभी तो देखो हरे–भरे मुल्क को केसे खून से भिगो दिया है।''[284]

''यह सब जिहालत का नतीजा है। अपनी–अपनी जबान के कैदी सब बन गए हैं। अरे अक्ल के दुश्मनों, आपस में लड़कर देश का सत्यानाश कर रहे हो।

मैं तो कहता हूँ, बँट जाने दो हिंदुस्तान को.... यह अखण्डता ही हमारी मुसीबत बन गई है। जब हम साथ रहना नहीं चाहते और सरकार भी दंगों–फसादों की बैसाखी पर खड़ी है, तो फिर यह दिखावा क्यों?....

हिंदू–मुसलमान के ताने–बाने से बना यह हमारा समाज एक दिन नहीं टिक सकता।.... अरे भाई हम एक–दूसरे पर निर्भर हैं।' चंद्रशेखर चीखे।''[285]

गोविंद निहलानी के 'तमस' धारावाहिक के पहले भाग में अपने वक्तव्य में कहते हैं.... आजादी के बरसों बाद भी हम समाज से साम्प्रदायिक तत्वों को हटा नहीं पाए हैं। साम्प्रदायिकता का प्रमुख कारण व्यक्तिवादी हठ है। जिसके नशे में चूर हो वह भूल जाता है कि जिसे वह कष्ट पहुँचा रहा है उसके सदृश ही इंसान है। नासिरा जी लिखती हैं–

''भविष्य में आने वाली नस्लों के सामने बुजुर्गों का शर्मिंदा तजुर्बा और उसकी अदायगी की कीमत कुर्बानी की शक्ल में उनके सामने होगी। विश्वास है कि वे मानवीय पीड़ा और काले अनुभवों से सबक लेंगी और ऐसी राजनीति से हाथ खीचेंगी जो अभिशाप बन दिलों को काटती है, जमीन को बाँटती, घरों को उजाड़ती, बारूद के ढेर पर बैठे इंसानों को रूहानी तौर पर लगातार कमजोर

---

283 गाँधी और सांप्रदायिक एकता–सुनील कुमार अग्रवाल, पृ. अपपप

284 नासिरा शर्मा, सबीना के चालीस चोर (क.सं. 2), संस्करण–2011 पृ. 241

285 नासिरा शर्मा, सबीना के चालीस चोर (क.सं. 2), संस्करण–2011 पृ. 353, 358, 359

बनाती जा रही है।''[286]

'इब्ने मरियम' संग्रह की 'आमोख्ता' कहानी पंजाब में स्थित एक हिंदू की व्यथा का बखान करती है। सांप्रदायिकता की आँधी उसके पूरे हँसते खेलते परिवार की नींव उखाड़ फेंकती है। परन्तु इस हादसे में उसका पोता बच जाता है।

इस कहानी का एक दृश्य देखिये–''आतंकवाद, उग्रवादी हत्यारे–इन शब्दों के शोर से घबराकर आँख बंद करता हूँ। अपने भ्राजी की पहचान धुँधली पड़ने लगती है। सामने सजी अर्थियों की पंक्तियाँ पानी में बहते फूलों की तरह गुजरने लगती हैं। कानों में बैन की आवाजें नगाड़े की तरह गूँजने लगती है। जलते गोश्त की गंध से सिर चकराने लगता है। आँखों के सामने अँधेर के जाले उतर आए हैं। मरने वालों का कोई नाम नहीं, कोई पहचान नहीं, बस जो है वह उग्रवादी।''[287]

'मोमजामा' कहानी में सांप्रदायिकता की भड़कती आग ने बदी के पूरे परिवार को बम विस्फोट की सुलगती आग में जला कर राख कर दिया।

इस संबंध में डॉ. ज्योति गजभिए लिखती हैं–''नासिरा शर्मा का कहानी संग्रह 'इब्ने मरियम' एक मौके की वैचारिक अव्यवस्थिति रखता है। इस संग्रह की लगभग सभी कहानियाँ इसी प्रकार के पूर्वाग्रहों को लेकर लिखी गई है, जिसके शिकार लोग हिंसा पर उतारू हो जाते हैं जिसके कारण जीवन की सहजता नष्ट हो जाती है। समाज में ऐसी अमानवीय स्थितियाँ बनती है। जिसके शिकार निरपराधी लोग होते है। राष्ट्रवाद, धर्मान्धता, जातिवाद, नस्लवाद के नशे में डूबे लोग अपने विकृत चेहरे को देखने में या तो असमर्थ होते हैं या फिर अनदेखा करने की राजनीतिक कुटिलता रखते हैं। संक्षेप में सब मनुष्य को मनुष्य नहीं रहने देते हैं और संकीर्ण तथा अमानवीय सोच और व्यवहार की ओर ले जाते हैं।''[288]

'असली बात' कहानी के शहर में हिंदू–मुस्लिम फसाद हो जाता है। अंततः पुलिस को कर्फ्यू लगाना पड़ता है। कर्फ्यू के कारण ''दोनों मोहल्लों के गरीबों ने पछताना शुरू कर दिया था।.... मजदूर ने मजदूरी से हाथ धोया, दुकानदारों ने ग्राहकों से। चूल्हे तो घर–घर दूसरे दिन से ही ठण्डे पड़ने लगे थे। कर्फ्यू खुलता

---

[286] नासिरा शर्मा, शब्द और संवेदना की मनोभूमि, सं. ललित शुक्ल, पृ. 7–8

[287] नासिरा शर्मा, इब्ने मरियम (क.स.1), संस्करण–2011 पृ. 321

[288] समकालीन लेखिका नासिरा शर्मा का कथा साहित्य, डॉ. ज्योति गजभिए, पृ. 65

भी घंटे भर को तो खरीदारी की शक्ति किस में थी।''[289] नासिरा जी ने केवल साम्प्रदायिकाता को उजागर किया और अपने कथा–साहित्य के द्वारा उसका समाधान भी बताया है। उनका कथा साहित्य साम्प्रदायिकता पर प्रहार करता है तथा लोगों के बीच किस तरह भाईचारे और समन्वय का विकास हो इसका भी पूरा प्रयास किया है।

शोषण के संबंध में नासिरा शर्मा लिखती हैं–''जिन कुरीतियों एवं परम्परा से भारत मुक्त था वही आज उसकी मुख्य समस्या बन चुकी है, जैसे बंधुआ मजदूरी। लाख कानून बने, मगर उनका पालन अभी पूरी तरह नहीं हो रहा है। उसी तरह महिलाओं के प्रति बने कानून फाइलों की शोभा अवश्य बन चुके हैं। मगर समाज का दृष्टिकोण अधिक पुरातनपंथी बन गया है। यदि यदा–कदा पाठकगण अपनी प्राचीन सभ्यता के इतिहास को उलटते–पलटते रहें तो उनकी मानसिकता पर वर्तमान का इतना गहरा अँधेरा नहीं छायेगा और अतीत की रोशनी से वह वर्तमान को अच्छी तरह देख पाएँगे और मानव सभ्यता एवं प्रगति अपनी दिशा नहीं खोएगी।''[290]

'अग्निपरीक्षा' कहानी में गाँव का मुखिया मंगलू कम्मो कुम्हारिन की जमीन हड़पने पर तुला हुआ है। इसी कारण वह कम्मो पर 'सरा' का भी आरोप लगाता है। लेकिन कम्मो अपनी जमीन नहीं छोड़ती है और 'सरा' दिखाने के लिए तैयार होने के कारण वह भागने की कोशिश करता है लेकिन गाँव वाले उसे पकड़कर लाते हैं। वह कम्मो का शोषण न करने का और उसकी जमीन न लेने की शपथ लेता है। समाज में आज भी कई मंगलू हैं, जो गरीबों का शोषण कर रहे हैं। गरीबों को इस शोषण से मुक्त करने के लिए शासन स्तर पर प्रयत्न के साथ समाज में जागृति आवश्यक है।

''राजसत्ता की दमनकारी संस्थाओं एवं न्यायिक शक्तियों के सहयोग से इस वर्ग में शोषण के लिए स्वरूपों को विकसित किया है। वे इतने अधिक प्रभावशाली हैं कि गाँव के मध्यम कृषक एवं अन्य लघु कृषक समूहों में इनकी राजनीति शक्ति को

---

[289] इंसानी नस्ल, नासिरा शर्मा, प्रतिभा प्रतिष्ठान, नई दिल्ली, संस्करण–2015 पृ. 16

[290] समकालीन लेखिका नासिरा शर्मा का कथा साहित्य, डॉ. ज्योति गजभिए, पृ. 37

स्वीकार कर लिया है।''[291]

अमरीक सिंह दीप जी कहते हैं, ''धर्म एक ऐसी महामारी है, जिसकी चपेट में आकर दुनिया में सबसे ज्यादा लोग मरते हैं। महाभारत और रामायणकाल से लेकर आज तक जितनी जनहानि धर्म युद्धों से हुई, उतनी किसी अन्य महामारी से नहीं हुई है। मुस्लिम आतंकवाद हो या कि हिंदू आतंकवाद अथवा अन्य किसी धर्म का आतंकवाद हर आतंकवाद का जड़मूल धर्म ही है। धर्म आदमी को असहिष्णु बनाता है, निर्मम और क्रूर बनाता है। तलवार–त्रिशुल, बंदूक उठाना सिखाता है। आदमी की नस्ल को गाजर मूली की तरह काटना सिखाता है। उसे दुराचारी, अत्याचारी और बलात्कारी बनाता है।''[292]

'तीसरा मोर्चा' की कहानी सांप्रदायिकता और आतंकवाद की सरहदो को छूती हुई औरत की अस्मिता पर आकर ठहर जाती है। इसमें एक कश्मीरी पीड़ित औरत की पीड़ा को दर्शाया गया है जिसका वर्दी वाले बलात्कार कर देते हैं और उसके दो बच्चों को मार डालते हैं। जबकि शौहर साल भर से लापता है। यह कश्मीरी औरत, चाहे वह हिंदू हो या मुसलमान, का जनरल फेनोमेना है और इसने निःसंदेह इस खूबसूरत वादी में आतंकवाद को बढ़ावा दिया है। ''विभिन्न धर्मों के ठेकेदारों, पंडितों, मुल्लाओं और ज्ञानी संतों ने धर्म के बाह्य स्वरूपों, उसके कर्मकाण्ड और उसकी औपचारिकता को प्रधानता दे डाली, उनके आधारभूत तत्वों की एकता पर जोर नहीं दिया।''[293]

राजनीति ने भी अपने स्वार्थ हेतु धर्म का अवलंब किया। वर्तमानकाल में पूरे भारतवर्ष के विभिन्न भागों में हुए सांप्रदायिक दंगों के पीछे धर्म ही मूल कारक के रूप में कार्यरत है। नासिरा शर्मा एक संवेदनशील लेखिका होने के नाते उनके साहित्य में ज्यादातर सांप्रदायिक सौहार्द्रता दिखाई देती है।

निष्कर्ष–

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि लेखिकाएं आज स्त्री के स्वतन्त्र अस्तित्व को पूरी

---

[291] सं. एन.के. महला, राजीव गुप्ता, जयप्रकाश शर्मा, रवि श्रीवास्तव, वर्ग विचारधारा एवं समाज, पृ. 73–74 (राजीव गुप्ता, उपनिवेशवाद के कृषक संदर्भ)

[292] नासिरा शर्मा एक मूल्यांकन, सं. एम. फीरोज अहमद, पृ. 116

[293] सं. डॉ. शशि तिवारी, भारतीय धर्म और संस्कृति, पृ. 47

ईमानदारी और सफलता के साथ वर्णन कर रही है। इनके चित्रण से स्पष्ट होता है कि आज की स्त्री परम्परागत मूल्यों की अपेक्षा नये सामाजिक मूल्यों को स्वीकार कर रही है। ये लेखिकाएं अपने स्त्री पात्रों को मर्द नहीं बनाना चाहती, बल्कि इसी रूप में ही इन्हें आजाद और मुक्त करना चाहती है। इन लेखिकाओं ने स्त्री चेतना के माध्यम से स्त्री को वस्तु से व्यक्ति की श्रेष्ठी में अंकित किया है। बदलते परिवेश, बदलती स्त्री और उसके कारण स्त्री के लिये निर्धारित मानदण्डों में बदलाव समाजिक संक्रान्ति को जन्म दे रहा है। ऐसे ही लगातार परिवर्तित विचार–विमर्श इनकी रचनाओं से निचोड़ कर आंजलता एवं स्वाभाविकता का प्रगांढ़ संगम है, जो पाठक के मन एवं हृदय को सराबोर कर देता है, जिससे पाठक का हृदय जीवंत हो जाता है।